ऋग्वेद

ओ३म्

यजुर्वेद

पवमान

(संयुक्तांक)

वर्ष : 33 फाल्गुन-चैत्र-बैशाख वि0स0 2078 अंक : 3-4 मार्च-अप्रैल 2021

मुद्रकः सरस्वती प्रेस, देहरादून वजनः 50 ग्राम

वैदिक साधन आश्रम के ग्रीष्मोत्सव में आप सादर आमंत्रित हैं।

बुधवार 12 मई से रविवार 16 मई 2021 तक

वैदिक साधन आश्रम तपोवन, नालापानी, देहरादून-248008

सामवेद अथर्ववेद

पवमान पत्रिका हमारी वेबसाइट www.vaidicsadhanashramdehradun.com पर भी उपलब्ध है।

'श्रद्धांजलि'

श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक नहीं रहे

4 फरवरी 2021 को सुबह में रोजड़ स्थित वानप्रस्थ साधक आश्रम में उनका देहावसान हो गया। स्वामी जी आर्य जगत् के सुप्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् एवं योग साधक थे। उनके प्रारंभिक जीवन को देखकर हमें आश्चर्य होता है कि वे कहां से कहां पहुंच गए। उनके जीवन में जो असाधारण उत्कर्ष हुआ इसके पीछे उनके पूर्वजन्म के संस्कार भी कारणभूत हो सकते हैं। स्वामी जी ने आर्यसमाज के पण्डितों से वेद, व्याकरण, दर्शन आदि ग्रन्थों का गम्भीर अध्ययन किया था और तत्पश्चात् उन्होंने अध्यापन कार्य भी किया।

स्वामी सत्यपति जी ईश्वर साक्षात्कार अथवा मोक्ष को सर्वाधिक महत्त्व देते थे। उनका धर्मोपदेश ईश्वर, ईश्वर साक्षात्कार, मोक्ष, योग आदि विषयों पर ही केन्द्रित होता था। वे जब इन विषयों पर प्रवचन करते थे, तब श्रोताओं को ईश्वर, जीवात्मा, मुक्ति आदि परोक्ष विषयों की सत्ता में अनायास श्रद्धा–विश्वास उत्पन्न हो जाता था।

स्वामी जी ने लगभग पांच दशक तक देश–विदेश में विभिन्न स्थानों पर योग शिविरों को आयोजित कर सैद्धान्तिक तथा क्रियात्मक योग का प्रचार किया। स्वामी जी ने रोजड़ में दर्शन योग महाविद्यालय तथा वानप्रस्थ साधक आश्रम जैसी संस्थाओं के माध्यम से अनेक जिज्ञासुओं तथा ब्रह्मचारियों को वैदिक दर्शनों की शिक्षा प्रदान की और उन्हें क्रियात्मक योगाभ्यास के क्षेत्र में प्रवृत्त किया। यह प्रसन्नता की बात है कि वर्तमान में उनके कई योग्य शिष्य–प्रशिष्य अपने–अपने स्तर पर वैदिक अध्यात्म एवं दर्शन विद्या का अध्ययन–अध्यापन एवं प्रचार–प्रसार कर रहे हैं।

स्वामी सत्यपति जी का सम्पूर्ण जीवन दर्शन–विद्या और योगाभ्यास के प्रचार–प्रसार के लिए समर्पित रहा। उन्होंने महर्षि पतंजलि जी के योग सूत्रों का सुंदर भाष्य प्रस्तुत किया है जो समझने में सरल है और चमत्कारवाद, अतिशयोक्ति आदि दोषों से सर्वथा मुक्त है। वे योग दर्शन में वर्णित विभूतियों की सृष्टिक्रम अनुकूल, बुद्धि–प्रमाण संगत व्याख्या करने के पक्षधर थे। उनके उपदेशों का संग्रह जो बृहती ब्रह्ममेधा के नाम से तीन खंडों में प्रकाशित हुआ है इसमें उन्होंने वैदिक अध्यात्म विद्या की सरल सुगम व्याख्या प्रस्तुत की है। इस ग्रंथ को ठीक से पढ़ने से पाठकों को वैदिक संध्या–उपासना तथा योग का मर्म सुगमता से समझ में आ सकता है और महर्षि दयानंद जी के सत्यार्थ प्रकाश, आर्याभिविनय, वेदभाष्य आदि ग्रंथों के तात्पर्य को ठीक से समझने में भी सुविधा प्राप्त होती है, एक विशिष्ट आध्यात्मिक – दार्शनिक दृष्टि प्राप्त होती है। स्वामी जी द्वारा रचित सरल योग से ईश्वर साक्षात्कार, योग मीमांसा आदि अन्य ग्रंथ भी अति मूल्यवान हैं।

स्वामी सत्यपति जी का देहरादून से विशेष लगाव था। वह वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, देहरादून तथा द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरुकुल, देहरादून में अनेक वर्षों तक योग शिविर के माध्यम से योगदर्शन आदि पढ़ाते रहे।

यह निश्चित है कि एक उच्च कोटि के दार्शनिक तत्त्ववेत्ता, योग साधक, वैदिक धर्मोपदेशक तथा आदर्श संन्यासी के रूप में स्वामी सत्यपति जी महाराज की स्मृति चिरस्थायी बनी रहेगी। वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, देहरादून एवं उत्तराखण्ड प्रदेश की समस्त आर्य संस्थाएं स्वामी जी को भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करती हैं।

ओ३म्

पवमान

वर्ष–33 अंक–3–4 (संयुक्तांक)

फाल्गुन–चैत्र–बैशाख 2078 विक्रमी मार्च–अप्रैल 2021

सृष्टि संवत् 1,96,08,53,122 दयानन्दाब्द : 197

★

–: संरक्षक :–

स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती

मो. : 9410102568

★

–: अध्यक्ष :–

श्री दर्शनकुमार अग्निहोत्री

मो. : 09810033799

★

–: सचिव :–

प्रेम प्रकाश शर्मा

मो. : 9412051586

★

–: आद्य सम्पादक :–

स्व0 श्री देवदत्त बाली

★

–: मुख्य सम्पादक :–

डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री

अवैतनिक

मो. : 9336225967

★

–: सम्पादक मण्डल :–

अवैतनिक

आचार्य आशीष दर्शनाचार्य

मनमोहन कुमार आर्य–

मो. : 9412985121

★

–: कार्यालय :–

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन,

तपोवन मार्ग, देहरादून–248008

दूरभाष : 0135–2787001

मोबाईल : 7895978734 (श्री चन्दन सिंह)

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com

Web-www.vaidicsadhanashramdehradun.com

विषयानुक्रम

सम्पादकीय	डॉ० कृष्ण कान्त वैदिक शास्त्री	2
वेदामृत	आचार्य डॉ० रामनाथ वेदालंकार	3
मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है स्वाध्याय	डॉ. कृष्ण कान्त वैदिक	4
आर्यसमाज विश्व कल्याण एवं अविद्या दूर करने का आन्दोलन	मनमोहन कुमार आर्य	7
क्या है धन की गति	डॉ. विवेक आर्य	10
ऋषि दयानन्द को शिवरात्रि को हुए बोध से विश्व से अविद्या...	मनमोहन कुमार आर्य	11
वेद मनीशी पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का जीवन और कार्य	डॉ. भवानीलाल भारतीय	13
आश्रम का ग्रीष्मोत्सव दिनांक 12 मई से 16 मई 2021 तक		15
बाल्मीकी के राम	स्व. रघुनाथ प्रसाद पाठक	19
पं. लेखराम की ऋषि दयानन्द से भेंट का प्रभाव	मनमोहन आर्य	22
वैदिक संस्कृति की पुनर्स्थापना की आवश्यकता	डॉ. कृष्ण लाल डंग	25
वसंत ऋतु में आहार–विहार	डॉ. भगवान दास	26
साँख्य दर्शन तत्वज्ञान कक्षा (प्रथम भाग)	आचार्य आशीष जी	27
सन्ध्या का अर्थ एवं व्याख्या	डॉ. सत्यदेव सिंह	28

ofnd lk/ku vkJe rikou] ngjknw ds cSd [kkrks dk fooj.k

nku grq cSd [kkrs dk uke	cSd dk uke o irk	cSd vdkmUV u-	IFSC Code
vkJe dks nku nsus ds fy;s			
1- ^ofnd lk/ku vkJe**	dsujk cSd] Dykd Vkoj ckp ngjknw	2162101001530	CNRB0002162
ioeku if=dk 'kqYd			
2- ^ioeku**	dsujk cSd] Dykd Vkoj ckp ngjknw	2162101021169	CNRB0002162
rikou fo|kfudsru Ldwy ds fy;s			
3- ^rikou fo|k fudsru**	;wfu;u cSd] rikou jksM] ukykikuh] ngjknw	602402010003171	UBIN0560243

ioeku if=dk esa foKkiu dh njsa

1. कलर्ड फुल पेज — रु. 5000 / – प्रति माह
2. ब्लैक एण्ड व्हाईट फुल पेज — रु. 2000 / – प्रति माह
3. ब्लैक एण्ड व्हाईट हॉफ पेज — रु. 1000 / – प्रति माह

lnL;rk ds fy, ioeku if=dk dh njsa

1. वार्षिक मूल्य (12 प्रतियाँ प्रति वर्ष) — रु. 200 / – वार्षिक
2. 15 वर्ष (आजीवन) के लिए मूल्य — रु. 2000 / –

ukV% पवमान पत्रिका फुटकर विक्रय के लिए उपलब्ध नहीं है।

पवमान में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार सम्बन्धित लेखक के हैं। सम्पादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है। किसी भी विवाद के प्रतिवाद हेतु न्यायक्षेत्र देहरादून ही होगा। आपत्ति की अवधि प्रकाशन तिथि से एक माह के भीतर ही मानी जायेगी।

सम्पादकीय

अभय की महिमा

गीता में दैवीय सम्पदा के परिचायक 26 गुणों का वर्णन करते हुए सबसे पहले अभय का उल्लेख किया गया है। अभय का अर्थ है—बाहरी भयों से मुक्ति। भय हैं— मौत का भय, रोग भय, धन—दौलत लुट जाने का भय, शत्रु प्रहार का भय और प्रतिष्ठा हानि का भय आदि। भय का अभाव ही अभय है। डरना मनुष्य ही नहीं सभी प्राणियों की कमजोरी है। मनुष्य स्वयं बलवान व्यक्ति से डरता है और दुर्बलों को डराता हैं, इस प्रकार यह एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। भय एक संक्रामक बीमारी है, जिसका इलाज अभय है। कहा जाता है कि भय दुःख का मूल कारण है। यहां यह भी कह सकते हैं कि भय पुरुषार्थ का आदि स्रोत है। रोग व भय से आयुर्वेद का आविष्कार हुआ। शत्रु भय से अनेक प्रकार के हथियारों का आविष्कार हुआ। भय से छुटकारा पाने के लिए जितने भी परमाणु बम आदि आयुधों के आविष्कार होते हैं, उतने ही अधिक भय बढ़ते जाते हैं। हमारे अन्तःकरण में सद्गुण और दुर्गुण दोनों विद्यमान रहते हैं। निर्भयता सभी गुणों की नायिका है। बाहरी भयों में सबसे बड़ा भय मृत्यु का भय होता है। मृत्यु को सखा समझने पर ही हम सुखी रह सकते हैं क्योंकि यह अटल और अवश्यंभावी है। भय एक नकारात्मक भावना है। यह सम्भावित खतरे के लिए एक सहज प्रतिक्रिया के रूप में सभी प्राणियों में पायी जाता है और कई रूपों में प्रकट होता है। भय मानव द्वारा अनुभव की जाने वाली एक अपरिहार्य भावना है। भय की सीमा एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में बदलती रहती है। यह प्रत्याशा के कारण होता है। अंधविश्वासी, बुद्धिमान, और अनिश्चित्ता भय के तीन अलग अलग प्रकार होते हैं। अंधविश्वासी भय काल्पनिक चीजों का एक भय है। अनिश्चित्ता के भय से आगे के परिणाम का पता नहीं चलता है।

प्राचीन राज्यशास्त्र में अभय शब्द का उल्लेख अनेक स्थानों पर मिलता है। राज्य में अभय की आवश्यकता बताते हुए कहा गया है कि शासन ऐसा होना चाहिए कि जिसमें हर व्यकित निर्भय हो। निर्भयता व्यक्ति द्वारा आत्म निरीक्षण करके काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद आदि विकारों को दूर करने के बाद प्राप्त होती है। भय सारे पापों का मूल है। यदि भय न हो तो व्यक्ति अन्याय सहन नहीं कर सकता है। शास्त्रों में तीन प्रकार की निर्भयता बताई गई है— विज्ञ निर्भयता, परमेश्वर—निष्ठ निर्भयता और विवेकी निर्भयता। विज्ञ विवकपूर्वक परिस्थितियों से उत्पन्न खतरों का सामना करने से आती है। विवेकी निर्भयता शांत बुद्धि से विवेकपूक प्रयास करने से प्राप्त होती है और परमेश्वर—निष्ठ निर्भयता परमेश्वर की उपासना से प्राप्त होती है। इसलिए मृत्यु से भय रखना अध्यात्म विरोधी है। जहां देह में आसक्ति है, वहीं कायरता है। आत्मज्ञान हो जाने पर कायरता दूर हो जाती है। परमेश्वर वेद के माध्यम से कहते है—^ek Hkeki lfoD;kvre#;Kk* vFkkr g vkReu! r Hk;Hkhr er gkA gekj 'kjhj vkj eu e gh nokl j lxke py jgk gA nokl j&lxke dh bl ;KLFkyh e eu"; dk fopfyr vkj Hk;Hkhr u gkr g, viuk thou ifo=] rtke;] rike; vkj Áj.kkÁn cukuk pkfg,A

MkW —".k dkUr ofnd 'kkL=h

ओ३म्

वेदामृत

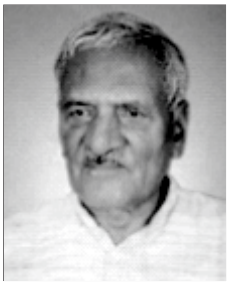

'चार पुरुषार्थ'

pr[jf'pn nnekukn] fcHkh;knk fu/kkrk%A
u n#Drk; Li`g;srAA

_Xosn 1-41-9

_f"k% d.o% ?kkSj%A nork o#.kfe=k;Ze.k%A NUn% fiihfydke/;k xk;=hA

(चतुरः चित्) चारों ही ¿पुरुषार्थोंÀ को (ददमानात्) धारण करनेवाले से (बिभीयात्) डरे, (आ निधातोः) जब तक वह इन्हें छोड़ न दे। (दुरुक्ताय) दुर्वचन की (न स्पृहयेत्) स्पृहा न करे।

प्रायः देखा यह जाता है कि मनुष्य भयसंत्रस्त असत्पुरुषों से होता है कि वे कहीं हमें हानि न पहुंचा दें। अंधकार के चोर से वह थर–थर कांपता है। आततायी को देख घर में जा दुबकता है। पर इस प्रकार के असाधु पुरुषों से तो उसे संघर्ष करना चाहिए, न कि उनसे डरना और संघर्ष करके विजयी होना चाहिए। तो फिर मनुष्य किससे डरे? उससे जो कि धार्मिक है, जो धर्मपूर्वक धन कमाता है, जो धर्माविरुद्ध काम में प्रवृत्त होता है और जो जीवन्मुक्त है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चार पुरुषार्थ मानव की उन्नति के चार सोपान हैं, जिनका मूल धर्म है। किसी ने धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय–निग्रह, धी, विद्या, सत्य, अक्रोध को धर्म कहा है, किसी ने जो धारण करे उसे धर्म कहा है, किसी ने जो स्वयं के लिए प्रिय हो वैसा ही व्यवहार दूसरों के प्रति करने को धर्म कहा है। धर्म के लक्षण अनेक हो सकते हैं, पर सबमें मूल भावना एक ही है कि वे ही कार्य धर्म कहाते हैं, जिनसे अन्यों का भी कल्याण हो और अपना भी। धर्म के समान धन भी उन्नति का साधन है, पर तभी तक, जब तक वह धर्मानुकूल उपायों से अर्जित किया गया हो, अन्यथा वह पतनोन्मुख करनेवाला बन जाता है। 'काम' भी धर्म–विरुद्ध होने पर पतन का साधन बनता है, किन्तु धर्मानुकूल होने पर संकल्प–बल द्वारा बड़े–बड़े कार्यों का साधक होता है। जैसे निर्वात स्थान में दीपक की लौ निश्चल रहती है, वैसे ही जिसके इन्द्रियां, मन आदि निश्चल हो गये हैं और जिसने समाधि से अपने आत्मा को परमात्मा में केन्द्रित कर लिया है, वह जीवन्मुक्त कहाता है, शरीरान्त होने पर वह मोक्ष पा लेता है। इन धर्म–अर्थ–काम–मोक्षरूप चारों पुरुषार्थों को धारण करनेवाले व्यक्ति से मनुष्य डरे कि ऐसे उच्च मनुष्यों के सम्मुख अशोभन कार्य करूं तो मेरे लिए डूब मरने की बात है। पर इनसे भय का कारण तभी तक है, जब तक ये लोग चारों पुरुषार्थों का सेवन करते हैं, यदि ये पुरुषार्थों को त्याग देते हैं तो ये उस कोटि के व्यक्ति नहीं रहते कि कोई पाप करते हुए इनसे डरे। चारों पुरुषार्थों के धारक किसी महात्मा से मनुष्य किस रूप में डरे इस का एक उदाहरण देता हुआ मन्त्र कहता है कि वह दुर्वचन बोलने की कभी स्पृहा न करे, अपितु इनके सान्निध्य से प्रेरणा पाकर सदा सुवचन ही बोले।

हे मित्रता के आदर्श मित्र प्रभु! हे पापनिवारण के आदर्श वरुण प्रभु! हे न्याय के आदर्श अर्यमा प्रभु! तुम हमारे अन्दर ऐसी वृत्ति उत्पन्न करो कि हम चारों पुरुषार्थों के धारक व्यक्तियों से शिक्षा लेकर सदा उनसे अनुमोदित सदाचार में ही प्रवृत्त रहें।

vkpk;Z Mk- jkeukFk onkyadkj
(रचित वेद–मंजरी ग्रन्थ से साभार)

मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है स्वाध्याय

&Mk0 —".k dkUr ofnd

सु+आङ् अधिपूर्वक इङ्–अध्ययने धातु से स्वाध्याय शब्द बनता है। स्वाध्याय शब्द में सु, आ और अधि तीन उपसर्ग हैं। 'सु' का अर्थ है उत्तम रीति से, 'आ' का अर्थ है आद्योपान्त और 'अधि' का अर्थ है अधिकृत रूप से। किसी ग्रन्थ का आरम्भ से अन्त तक अधिकारपूर्वक सर्वतः प्रवेश स्वाध्याय कहलाता है। आचार्य यास्क द्वारा लौकिक भाषा के लिए भाषा शब्द और वेद के लिए अध्याय शब्द का प्रयोग किया गया है। इस अर्थ पर विचार करने के उपरान्त हम देखते हैं कि वह अध्ययन ही स्वाध्याय कहा जा सकता है, जिसमें वेद का अध्ययन सम्मिलित हो। इसके अतिरिक्त स्वाध्याय का अर्थ है– 'स्वस्य अध्यायः' अर्थात् अपनी सत्ता का अध्ययन, आत्मा का ज्ञान प्राप्त करना और परब्रह्म का स्वरूप जानने के लिए अध्ययन करना स्वाध्याय है। महर्षि पतंजलि द्वारा योगदर्शन के साधनापाद के प्रथम सूत्र में कहा गया है– ''तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधानानिक्रियायोगः'' अर्थात् तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान यह योग की क्रिया हैं। स्वाध्याय सूक्ष्म शरीर का विषय है। इससे अहंकार, मन और बुद्धि शुद्ध होती है। स्वाध्याय शब्द तप और ईश्वर प्रणिधान दोनों के मध्य में है। इस शब्द से तप और ईश्वर प्रणिधान दोनों की पुष्टि होती है। स्वाध्याय न करने वाला व्यक्ति तपस्वी नहीं बन सकता है और न ही उसका ईश्वर पर विश्वास दृढ़ हो सकता है।

स्वाध्याय के लाभ– शतपथकार ने स्वाध्याय के लाभों का वर्णन करते हुए एक मंत्र (11.5.7.1) में कहा है कि इससे व्यक्ति ''युक्तमना भवति'' अर्थात् समाहित मन वाला या स्थिरचित्त हो जाता है। स्वाध्याय का दूसरा लाभ है कि वह, ''अपराधीनो भवति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति किसी की पराधीनता स्वीकार नहीं करता है। वह इन्द्रियों के रूप, रस, गन्ध आदि विषयों के वश में नहीं रहता है। तीसरा लाभ है–''अहरहरर्थान् साधयते'' अर्थात् वह दिनों–दिन अर्थों की सिद्धि करता है। यहां शतपथकार का अर्थ से आशय शब्द के पीछे जो गहन अर्थ है, उसकी सिद्धि कर लेना है। चौथा लाभ है–''सुखं स्वपिति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति चैन की नींद सोता है। पांचवां लाभ है– ''परम चिकित्सक आत्मनो भवति'' अर्थात् वह अपनी आत्मा का चिकित्सक हो जाता है, वह अपने मानसिक रोगादि विकारों की स्वयं चिकित्सा कर सकता है। छठा लाभ है– ''इन्द्रियसंयमः भवति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति इन्द्रिय संयमी हो जाता है। सातवां लाभ है– ''एकरामता भवति'' अर्थात् वह केवल एक तत्त्व परमात्मा से खेलता है। सांसारिक सभी खेलों से विमुख होकर केवल परमात्मा में ही आनन्द लेता है। आठवां लाभ है– ''प्रज्ञावृद्धिर्भवति'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति पण्डित बन जाता है। नवां लाभ है– ''ब्राह्मण्यम्'' अर्थात् उसमें ब्रह्ममण्यता आ जाती है। ब्रह्ममण्यता के आने से उसमें सभी प्राणियों के हित की कामना, सर्वदुःखानुभूति, संवेदनशीलता, परोपकारिता, स्वार्थत्याग, परमतपस्विता आदि गुण स्वतः आ विराजते हैं। दसवां लाभ है– ''प्रतिरूपचर्याम्'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति वह दर्पण है जिसमें हर सद्गुण की प्रतिकृति या छाया देख सकते हैं। ग्यारहवां लाभ है– ''यशः'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति को यश की प्राप्ति होती है। बारहवां लाभ

है– ''लोकपक्ति'' अर्थात् उसका लोक–परिपाक हो जाता है या उसे लोक सिद्धि प्राप्त हो जाती है। तेरहवां लाभ है– ''अर्चा–बुद्धि'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति की अर्चना होती है। उसके प्रभाव से जनगण में विनय, श्रद्धा, नम्रता आदि गुण आ जाते हैं और सभी श्रद्धापूर्वक उसका आदर करते हैं। चौदहवां लाभ है– ''दानशीलता'' अर्थात् उसे दान और दक्षिणा की प्राप्ति होती है। पन्द्रहवां लाभ है– ''अज्येयतया'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति अज्येय हो जाता है। सोलहवां लाभ है– '' अवध्यता'' अर्थात् वह सभी के लिए अवध्य हो जाता है।

स्वाध्याय के विषय में शतपथ ब्राह्मण में (11.5.6.3) में कहा गया है–

''यावन्तं ह वा इमां पृथिवीं वित्तेन पूर्णां ददँल्लोकं जयति त्रिस्तावन्तं जयति।'' अर्थात् धन से परिपूर्ण पृथिवी का दान देने पर जितने लोक जीते जा सकते हैं, स्वाध्यायशील व्यक्ति ठीक उससे तिगुने लोकों को जीत लेता है। यदि सामान्य यज्ञ करने वाला भूलोक को जीतता है, तो स्वाध्याय–यज्ञ करने वाला भूः, भुवः और स्वः तीनों लोकों को जीत लेता है। यदि सामान्य यज्ञ करने वाला मनुष्यलोक को जीत लेता है, तो स्वाध्यायशील व्यक्ति ठीक उससे तिगुने लोकों– मनुष्यलोक, पितृलोक और देवलोक को जीत लेता है। इसी मंत्र में याज्ञवल्क्य आगे कहते हैं– ''भूयांसं चाक्ष्यं (लोकं जयति) य एवं विद्वान् अहरहः स्वाध्यायमधीते'' अर्थात् जो विद्वान् इस प्रकार दिन–प्रतिदिन स्वाध्याय करता है, वह उससे भी बढ़ कर अक्षयलोक को जीतता है। अक्षयलोक का अर्थ है– न क्षीण होने वाला ब्रह्मलोक।

स्वाध्याय से पुनर्मृत्यु से मुक्ति– शतपथ ब्राह्मण में (11.5.6.9) में कहा गया है– ''अति ह वै पुनर्मृत्युं मुच्यते। गच्छति ब्रह्मणः सात्मताम्।'' अर्थात् स्वाध्यायशील व्यक्ति पुनर्मृत्यु से मुक्त हो जाता है। वह परमेश्वर के समान परान्तकाल तक जन्म–मृत्यु बन्धन से छूट जाता है। इस प्रकार एक बार के प्रयत्न से यदि उसे ब्राह्मणत्व प्राप्त हो गया तो उसका ब्राह्मणत्व मरता नहीं है और पुनर्जन्म प्राप्त करने पर वह, वहीं से कार्य आरम्भ कर देता है क्योंकि वह स्वाध्याय से ब्रह्म की सात्मता को प्राप्त कर लेता है अर्थात् वेद को आत्मसात कर लेता है, ब्रह्म (आनन्द) को आत्मसात कर लेता है।

वेद में वर्णित स्वाध्याय के लाभ– वेद में अनेक स्थानों पर स्वाध्याय के लाभ बताए गए हैं। ऋग्वेद के एक प्रसिद्ध मंत्र में कहा गया है–

पावमानीर्यो अध्येत्यृषिभिः संभृतं रसम्।
तस्मै सरस्वती दुहे क्षीरं सर्पिर्मधूदकम्।।
ऋग्वेद 9.67.32।।

अर्थात् जो व्यक्ति अग्नि, वायु आदि ऋषियों द्वारा सम्यक् भरण की गई रसीली पवित्र ऋचाओं का, वेदज्ञान का अधिकृत रूप से पारायण करता है और समय आने पर उनका प्रवचन भी करता है, उस स्वाध्यायशील और प्रवचनकर्ता के लिए वेदरस से युक्त वाणी क्षरणशील दुग्ध, घृत और शहद आदि हर प्रकार के उत्तम पेयों को देकर परिपूर्ण कर देती है।

परमेश्वर ने आदि सृष्टि में वेद का ज्ञान देते हुए अथर्ववेद (19.71.1) के एक मंत्र से जीवों के कल्याण के लिए अनेक लाभों का वर्णन किया है–

''स्तुता मया वरदा वेदमाता। प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम्। आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम्। मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्''

परमेश्वर कहते हैं कि मैंने ही जिसका स्तवन अथवा प्रस्ताव किया है और जो वेद–माता समस्त ज्ञान की निर्मात्री, समस्त लाभों की निर्मात्री है और जिसकी कुक्षि में रहकर व्यक्ति द्वितीय जन्म धारण करता है, अतः द्विजनिर्मात्री भी है। यह न केवल द्विजनिर्मात्री है अपितु द्विजों को पवित्र करने वाली है। यह वेदमाता वरों को देने वाली है, परन्तु उस

माता का एक आदेश है कि इसे सर्वत्र प्रेरित करो, प्रचारित करो। इससे तुम्हें दीर्घ जीवन, उसका आधार प्राणशक्ति, प्रजनन शक्ति, सन्तान, पशुधन, यश, धन ओर ब्रह्मतेज, ये सात वर मिलेंगे जिनमें सभी लौकिक मंगलों का समावेश हो गया है। इसके अतिरिक्ति एक अन्य पारलौकिक मंगल है, वह भी तुम्हारे लिए है, परन्तु उसके लिए शर्त यह है कि पहले इन सातों लौकिक मंगलों को मुझे दे दो। इन्हें मुझे देकर मोक्षधाम को चले जाओ।

egf"k iratfy us dgk g& ''स्वाध्या–दिष्टदेवतासम्प्रयोगः'' अर्थात् वेदादि मोक्षशास्त्रों के पठन–पाठन, प्रणवादि मंत्रों के जाप के अनुष्ठान से परमात्मा के साथ सम्प्रयोग=सम्बन्ध स्थापित होकर, उसका साक्षात्कार हो जाता है। महर्षि मनु ने वेद के स्वाध्याय करने का फल बताया है–

> वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रिया क्षमा।
> नाशयन्त्याशु पापानि महापातकजान्यपि।।
> यथैधस्तैजसां वह्निः प्राप्तं निर्दहति क्षणात्।
> तथा ज्ञानाग्निना पापं सर्वं दहति वेदविद्।।
> मनु0 11.245–246।।

प्रतिदिन वेद का यथासम्भव अध्ययन–मनन, पंचयज्ञों का अनुष्ठान, तप–सहिष्णुता, बड़े पापों से उत्पन्न पाप–भावनाओं और दुःसंस्कारों का भी नष्ट कर देती है। जैसे अग्नि अपने तेज से समीप आए हुए काष्ठ आदि इन्धन को जला देती है, वैसे ही वेद का ज्ञाता, वेद रूपी अग्नि से सब आने वाली पाप–भावनाओं को जला देता है। जब साधक वेद के स्वाध्याय से अपनी सभी पाप–भावनाओं और पाप–संस्कारों को नष्ट कर देता है, तो ऐसा साधक धर्मनिष्ठ बन कर परमात्मा के ज्ञान द्वारा परमात्मा के सानिध्य को अनुभव करता है। इस प्रकार का ज्ञान होना ही परमात्मा की प्राप्ति है। परमात्मा ही जीवात्मा का इष्टदेव है और परमात्मा द्वारा प्रदत्त वेदज्ञान से ही परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करने में सक्षम होता है।

महर्षि व्यास ने 1.28 के भाष्य में कहा है–

''स्वाध्याययोगसंपत्त्या परमात्मा प्रकाशते''

अर्थात् स्वाध्याय और योग की सम्पत्ति से परमात्मा का ज्ञान हो जाता है।

महर्षि व्यास ने 2.32 के भाष्य में कहा है–

''स्वाध्यायो मोक्षशास्त्राणामध्ययनं प्रणवजपो वा''

अर्थात् मोक्ष का उपदेश करने वाले वेदादि सत्यशास्त्रों का अध्ययन = पठन–पाठन करना और प्रणव=ओंकार का जप करना स्वाध्याय है।

ब्रह्मविद्या का जानकार वही होता है जो ईश्वर के लिए समर्पित हो। ईश्वर की अनुभूति करने के लिए अनेक लोग प्रयास करते रहते हैं, किन्तु बिरले ही यथार्थ रूप में ईश्वर के निकट पहुंच पाते हैं या उसकी अनुभूति कर पाते हैं। इसका कारण साधकों में पात्रता का अभाव होना है। संसार में दिखाई दे रही भौतिक वस्तुओं से मिलने वाले सुखों से अपने मन को हटाकर सर्वव्यापक परमात्मा में लगाना पड़ता है। ईश्वर अनुभूति के लिए परोपकारिता, दयालुता आदि गुणों को धारण करते हुए जीवमात्र में ईश्वर की छवि देखने की दृष्टि पैदा करनी होती है। प्रत्येक साधक चाहता है कि उसे सुख की प्राप्ति हो। ऐसा सुख भौतिक वस्तुओं में नहीं है। यह तो ईश्वर की वास्तविक अनुभूति होने पर ईश्वर से ही प्राप्त हो सकता है, जिसके लिए यम, नियम आदि योग के आठों अंगों की साधना करते हुए समाधि लगानी पड़ती है। ज्ञान, भक्ति और कर्म ऐसे उपाय हैं, जिनसे पात्रता में वृद्धि की जा सकती है। जिस साधक को उसकी पात्रता को देखते हुए परमेश्वर चयनित कर लेता है, उसे ही वह प्राप्त हो पाता है। ज्ञानमार्ग का पथिक स्वाध्याय के द्वारा ही इस ओर आगे बढ़ सकता है। इसलिए, हम कह सकते हैं कि स्वाध्याय मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है।

&vk;lekt LFkkiuk&fnol 10 vizy ij&

आर्यसमाज विश्व कल्याण एवं अविद्या दूर करने का आन्दोलन

&euekgu dqekj vk;] ngjknu

आर्यसमाज एक सार्वभौमिक संगठन है जो संसार से धर्म व मनुष्य जीवन के क्षेत्र में सभी प्रकार की अविद्या को दूर करने के प्रयत्न करता है। आर्यसमाज की मुख्य विशेषता इसका ईश्वरीय ज्ञान वेदों पर आधारित होना है। आर्यसमाज के पास वेदों के सत्य अर्थों से युक्त ज्ञान प्राप्त है। आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द थे जो एक सिद्ध योगी होने सहित वेदों के मर्मज्ञ विद्वान थे। ऋषि दयानन्द ने वेदों के परम्परागत अर्थों को स्वीकार नहीं किया था अपितु अनेक प्रयास व पुरुषार्थ कर योग्य वेदगुरु प्रज्ञाचक्षु स्वामी विरजानन्द सरस्वती को प्राप्त होकर उनसे वेदांगों का अध्ययन किया था। उन्होंने अपने गुरु से वेदों के सत्य अर्थों पर विचार करने सहित मार्गदर्षन प्राप्त किया था। वह वेद के उसी अर्थ को स्वीकार करते थे जो व्याकरण शास्त्रानुसार पुष्ट होने के साथ सृष्टि कर्म के अनुकूल होने सहित ज्ञान व विज्ञान के सर्वथा अनुकूल तथा मनुष्य जीवन व समाज के लिये उपयोगी व लाभप्रद हो। ऋषि दयानन्द अज्ञान व अन्धविश्वासों सहित सामाजिक कुरीतियों के विरुद्ध थे जिससे मनुष्य मनुष्य में भेद किया जाता था और जिसमें किसी एक वर्ग को बिना विद्या प्राप्त किये ही विशेष अधिकार दिये जाते थे। ऋषि दयानन्द के समय में सभी अन्धश्विासों और सामाजिक कुरीतियों वा परम्पराओं को वेदों पर आधारित माना जाता था इसलिये ऋषि दयानन्द ने वेदों के सभी अर्थों पर विचारकर मिथ्याज्ञान व विश्वासों का खण्डन करने के साथ

वेद के मन्त्रों का प्राचीन ऋषि व निरुक्त परम्परा के अनुसार सत्य अर्थों का अनुसंधान कर उनको प्रस्तुत किया। वेदों के सत्य अर्थ का प्रकाश होने से सभी अविद्यायुक्त मत–मतान्तरों में विद्यमान अन्धविश्वासों व मिथ्या परम्पराओं की पोल खुल गई और मानव जाति के व्यापक हित में व्यापक सुधारों की आवश्यकता अनुभव की गई।

देश व समाज से अज्ञान, अविद्या, अन्धविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों को दूर कर सत्य ज्ञान पर आधारित वेद प्रचार का कार्य करने के लिये ऋषि दयानन्द ने अपने कुछ प्रबुद्ध अनुयायियों के अनुरोध व प्रेरणा करने पर मुम्बई में चैत्र शुक्ल पंचमी 1931 विक्रमी तदनुसार दिनांक 10 अप्रैल, 1875 को 'आर्यसमाज' नामी संगठन की स्थापना की थी। आर्यसमाज का उद्देश्य व कार्य मुख्यतः

सभी प्रकार की अविद्या को दूर कर उसके स्थान पर विद्या वा ज्ञान–विज्ञान पर आधारित सत्य सिद्धान्तों व मान्यताओं का प्रचार कर मत–पंथ व सम्प्रदायों का संशोधन करना कराना था। जिस प्रकार विज्ञान में सृष्टि विषयक उन्हीं मान्यताओं व सिद्धान्तों को स्वीकार किया जाता है जो पूर्णतः निर्भ्रान्त रूप से सत्य, तर्क व युक्तियों पर आधारित होते हैं, उसी प्रकार से आर्यसमाज ने भी वेदों के सत्य सिद्धान्तों के आधार पर प्राचीन व्याकरणानुसार वेदों के सत्य अर्थ प्रस्तुत किये और समाज में उनका प्रचार कर उसे अपनाने का महान प्रयास किया। आर्यसमाज संगठन के लोग वेद की मान्यताओं को ऋषि दयानन्द के अनुसार पूरी तरह से अपनाते व उसी के अनुसार अपना जीवन व्यतीत करते हैं। वह वेदों का स्वाध्याय करने के साथ सन्ध्या, देवयज्ञ अग्निहोत्र, पितृयज्ञ, अतिथियज्ञ तथा बलिवैश्वदेव–यज्ञ भी यथाशक्ति करते हैं तथा इन कर्तव्यों की युक्तियुक्तता पर प्रवचन, लेख व पुस्तकों द्वारा प्रचार भी करते हैं। यह भी कह सकते हैं वेदों की आज्ञा व सार मनुष्य जीवन में वेदों का स्वाध्याय करते हुए पंचमहायज्ञों को करना व अपने अन्य सभी कर्तव्यों को भी वेदों में निहित आज्ञाओं व मान्यताओं के अनुसार पालन करना है।

हम जानते हैं कि विद्या को प्राप्त कर उसके अनुसार जीवन बनाने व व्यवहार करने से ही मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति हो सकती है। इसके विपरीत अविद्या का अनुसरण करने पर मनुष्य का सार्वत्रिक पतन होता है। यही कारण था कि महाभारत के बाद आलस्य प्रमाद के कारण वेदों से दूर होने के कारण आर्यजाति का पतन हुआ। इसमें नाना प्रकार के अन्धविश्वास व कुरीतियां प्रचलित हो गईं थी। पतन की यह स्थिति थी कि आधी मनुष्य जाति मातृशक्ति व स्त्री जाति को वेदों के अध्ययन से वंचित कर दिया गया। यही नहीं हमारे सेवक श्रमिक व शूद्र बन्धुओं को भी वेदाध्ययन से वंचित कर दिया गया था। समाज के अधिकार सम्पन्न अन्य लोग भी वेदों के अध्ययन व उसके सत्य अर्थों का चिन्तन मनन नहीं करते थे। इसी कारण से समाज अत्यधिक पतन को प्राप्त होकर दुःख, पराभव तथा दासत्व को प्राप्त हुआ। इस पराभव व दासत्व की स्थिति से मुक्त होने का एक ही साधन था कि मनुष्य अपनी अविद्या को दूर करने के लिये वेद ज्ञान का आश्रय लें और संगठित होकर अपने सभी काम एक दूसरे के हित व लाभ के लिये करें। पंच महायज्ञ सहित वेदाज्ञाओं का पालन करने से मनुष्य समाज श्रेष्ठ मानव समाज बनता है। अतः ऋषि दयानन्द ने अज्ञान, अन्धविश्वास, अविद्या, पाखण्ड, मिथ्या मान्यताओं व परम्पराओं का खण्डन तथा सत्य ज्ञान युक्त वैदिक मान्यताओं का प्रचार व मण्डन किया। यही मनुष्य जाति के उत्थान व उत्कर्ष का मन्त्र है। ऋषि दयानन्द समाज सुधार के लिये वेदों की मान्यताओं पर मौखिक व्याख्यान दिया करते थे। इस कार्य के लिये वह देश के ऐसे स्थानों पर जाते थे जहां अविद्या, अन्धविश्वास, पाखण्ड तथा मिथ्या परम्परायें आदि विद्यमान थे। इस कार्य को करते हुए उन्होंने देश भर में सत्यधर्म, नैतिकता, समाजोन्नति तथा वेदाज्ञाओं के प्रचार के लिये सत्य वैदिक मान्यताओं व सिद्धान्तों का प्रचार किया। लोग उनके विचारों को सुनकर सहमति व्यक्त करते थे और निःस्वार्थ भाव वाले निष्पक्ष व्यक्ति उनके अनुयायी बन जाते थे।

वेद व वैदिक मान्यताओं का प्रचार करते हुए ऋषि दयानन्द ने अनुभव किया कि वेदों के व्यापक प्रचार के लिये एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता है जिसमें वेदों की सभी मुख्य मुख्य मान्यताओं को युक्ति व तर्क सहित प्रस्तुत किया जाये। लोगों के सभी भ्रमों सहित उनकी शंकाओं को भी उसमें सम्मिलित किया जाये और उनके ज्ञान व वेदों के अनुसार सत्य समाधान किये जायें। इस आवश्यकता की पूर्ति के लिये उन्होंने एक अभूतपूर्व ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' का प्रणयन किया। यह ग्रन्थ ऋषि दयानन्द ने मात्र साढ़े तीन महीनों में पूरा कर दिया था। सन् 1875 में

इसका प्रथम प्रकाशन हुआ था। इस ग्रन्थ के प्रकाशन व प्रचार से समाज में एक हलचल वा क्रान्ति उत्पन्न हुई थी। इसमें प्रथम दस समुल्लासों में सभी वैदिक मान्यताओं का प्रमाण पुरस्सर समर्थन व मण्डन किया गया था। इसके अतिरिक्त ग्यारहवें व बारहवें समुल्लासों में आर्यावर्तीय मत–मतान्तरों की अविद्या व मिथ्या मान्यताओं का खण्डन किया गया था। ग्रन्थ के प्रकाशक राजा जयकृष्ण दास, मुरादाबाद ने सत्यार्थप्रकाश के तेरहवें व चौदहवें समुल्लास का प्रकाशन नहीं किया था। कुछ समय बाद ऋषि दयानन्द ने इस संस्करण का संशोधित संस्करण तैयार किया और इसे चौदह समुल्लासों सहित प्रकाशित कराया। यह दूसरा व संशोधित संस्करण सन् 1884 में प्रकाशित हुआ था। आज यही संस्करण आर्यसमाज द्वारा देश देशान्तर में प्रकाशित किया जाता है। इस ग्रन्थ के देशी व विश्व की अनेक भाषाओं में अनुवाद भी हुए हैं। इससे इस ग्रन्थ की महत्ता व उपयोगिता का ज्ञान होता है। सत्यार्थप्रकाश को पढ़ने व समझने से मनुष्य अपनी अविद्या को दूर कर सकते हैं और सत्य ज्ञान सहित ईश्वर व अपनी आत्मा को प्राप्त हो सकते हैं। यही इस ग्रन्थ की सबसे बड़ी विशेषता है।

अपनी स्थापना से अद्यावधि आर्यसमाज ने वेद प्रचार सहित समाज सुधार का महनीय व प्रशंसनीय कार्य किया है। आर्यसमाज किसी भी प्रकार की मूर्तिपूजा को वेद विरुद्ध मानता है। यह अवतारवाद को काल्पनिक मानने सहित मृतक श्राद्ध को भी वैदिक सिद्धान्तों के विरुद्ध व अकरणीय मानता है। सभी जीवात्मायें परमात्मा की सन्ताने हैं। सभी को इस भाव को हृदय में रखकर तथा वेदाज्ञा के अनुसार परस्पर व्यवहार करने की शिक्षा आर्यसमाज देता है। आर्यसमाज मांसाहार आदि अभक्ष्य पदार्थों के सेवन का भी खण्डन व विरोध करता है। इससे अन्य प्राणियों को क्लेश होता है। आर्यसमाज की मान्यता है कि मांसाहार में सम्मिलित सभी व्यक्तियों को उनके इस वेदविरुद्ध कर्म का फल जन्म जन्मान्तर में परमात्मा से मिलता है। आर्यसमाज बाल विवाह, बेमेल विवाह आदि का विरोधी तथा पूर्ण युवावस्था में गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार वर व वधू की परस्पर सहमति से विवाह का करना उचित मानता है। आर्यसमाज प्रत्येक मनुष्य को वेदाध्ययन करने का अधिकार देता है और अपने गुरुकुल आदि शिक्षण संस्थाओं में इसे क्रियात्मक रूप देकर समाज के सभी वर्गों व वर्णों के बन्धुओं को वेदों का विद्वान व विदुषी बनाता है। देश से अज्ञान दूर करने के लिये ही ऋषि दयानन्द के अनुयायियों ने शिक्षा आन्दोलन के अन्तर्गत डीएवी स्कूल व कालेजों की देश भर में स्थापना कर अज्ञान को दूर किया था जिससे देश को अनेक लाभ हुए।

कम आयु की विधवाओं के पुनर्विवाह का भी आर्यसमाज विरोध नहीं करता। सभी मनुष्यों को व्यभिचार आदि कार्यों से दूर रह कर ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए शिक्षा ग्रहण कर देश व समाज की उन्नति करने का कर्तव्य व अधिकार है। आर्यसमाज किसी भी मनुष्य व समुदाय की किसी भी प्रकार की उपेक्षा, अन्याय, शोषण व पक्षपात का विरोध करता है। वह जन्मना जाति को भी वेद विरुद्ध, मनुष्यों द्वारा अज्ञान से प्रचलित व कृत्रिम मानता है। सभी मनुष्य व प्राणी ईश्वर की सन्तानें हैं और परस्पर बन्धुत्व के भाव में आबद्ध हैं। कोई भी मनुष्य जन्म से महान न होकर अपने ज्ञान, कर्म, सेवाओं, त्याग व योग्यता से महान होता है। इतिहास में वही लोग महान होते हैं जिन्होंने श्रेष्ठ कर्म किये हों। देश की आजादी का मूल मन्त्र भी आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने दिया था। सत्यार्थप्रकाश के आठवें समुल्लास में उन्होंने देश को स्वराज्य प्राप्ति व आजादी की प्रेरणा की है। उनके अन्य ग्रन्थों में स्वाधीनता के प्रेरक वचन मिलते हैं। ऋषि दयानन्द मनुष्य की बोलने व लिखने की आजादी के समर्थक थे परन्तु इस आजादी के दुरुपयोग का समर्थन कोई भी नहीं कर सकता। आज देश

में इस आजादी का दुरुपयोग देखकर दुःख होता है।

आर्यसमाज ने देश व समाज में ईश्वर के सत्यस्वरूप को प्रस्तुत कर उसका प्रचार किया और इस क्षेत्र में विद्यमान अविद्या को दूर किया। आर्यसमाज ईश्वर के उपकारों के लिये मनुष्यों को उसके गुणों का ध्यान करने व उसका साक्षात्कार करने की प्रेरणा करता है। ईश्वर का साक्षात्कार करना ही मनुष्य का कर्तव्य है। वायु व जल की शुद्धि आदि करना भी प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। इसके लिये सभी को देवयज्ञ अग्निहोत्र करना चाहिये जिसका प्रचार आर्यसमाज करता है। मनुष्य की सर्वांगीण उन्नति केवल आर्यसमाज व वैदिक विचारों के सेवन व धारण से ही होती है। अतः आर्यसमाज विश्व का श्रेष्ठ मानव निर्माण व विश्व कल्याण करने वाला संगठन है। सभी मनुष्यों को सत्यार्थप्रकाश पढ़कर अपनी अविद्या दूर करनी चाहिये और आर्यसमाज से जुड़कर ईश्वर का सन्देश वेदों का प्रचार करने में सहयोगी होना चाहिये।

क्या है धन की गति?

&Mk- food vk;] fnYyh

मैंने अपने जीवन में 10 वर्ष विभिन्न सरकारी और गैर सरकारी अस्पतालों में काम किया है। इस कार्य को करते हुए मुझे अनेक अच्छे–बुरे अनुभव हुए। सबसे अधिक बुरा तब लगता था जब मैं किसी युवक–युवती को नशे के कारण अस्पताल में भर्ती होते हुए देखता था। इनमें से अनेक समृद्ध परिवारों से सम्बंधित होते थे। आपको जानकर अचरज होगा कि धनी वर्ग से सम्बंधित अधिकांश युवाओं के माता–पिता नेता, उच्च अधिकारी, जज, बड़े व्यापारी आदि थे। इनके बिगड़ने का कारण भी यही था। उनके माता–पिता ने पवित्र धन का संचय नहीं किया था। अधिकांश युवक प्रचुर भोग सुविधाओं के कारण नशे का शिकार हो रहे थे तो युवतियों का प्रमुख कारण पति से अनबन, घरेलू क्लेश आदि था। अनेकों के तलाक आदि के मामले चल रहे थे। इनकी हालत देखकर मेरे मन में एक ही आध्यात्मिक विचार का पुनः संस्मरण हो गया कि धन की केवल तीन ही गति हैं– दान, भोग और नाश। अगर आप ईमानदारी से धन अर्जित करते हैं तो वह आपको और आपकी संतान को सुख देगा। अगर आप भ्रष्टाचार से धन अर्जित करते है। तो वह आपका नाश कर देगा। अगर आपकी आवश्यकता से अधिक धन आपके पास है तो उसे समाज की सेवा जैसे सत्कार्यों में लगाएं। अपनी चारों ओर देखिये। आपको मेरा कथन यथार्थ में देखने को मिलेगा। अपवित्र धन मनुष्य का ही नहीं उसकी सन्तान का भी नाश कर देता है।

इसी सन्देश को अथर्ववेद 3.24.5 में कहा गया है–

शतहस्त समाहर सहस्रहस्त संकिर।
कृतस्य कार्यस्य चेह स्फातिं समावह॥

अर्थात हे ईश्वर! आप सैकड़ों हाथों से हमें पवित्र धन दान दीजिये और हम हजारों हाथों से इस जीवन में अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए समृद्धि को प्राप्त करते हुए उसे दान करें। हम धन–धान्य प्राप्त करके अपने कर्त्व्य–कर्मों को ठीक रूप से करने वाले बने।

&_f"k ck/kkRlo io 11 ekpZ ij&

'ऋषि दयानन्द को शिवरात्रि को हुए बोध से विश्व से अविद्या दूर हुई'

&euekgu dqekj vk;Z] nsgjknwu

वर्तमान समय से लगभग 5,200 वर्ष पूर्व महाभारत का विनाशकारी युद्ध हुआ था। महाभारत काल तक वेद अपने सत्यस्वरूप में विद्यमान थे जिसके कारण संसार में विद्या व सत्य ज्ञान का प्रचार व प्रसार था। महाभारत के बाद वेदों के अध्ययन अध्यापन तथा प्रचार में बाधा उत्पन्न हुई जिसके कारण विद्या धीरे धीरे समाप्त होती गई और इसका स्थान अविद्या व अविद्यायुक्त मतों, मान्यताओं व पन्थों आदि ने ले लिया। अविद्या को अज्ञान का पर्याय माना जाता है। अविद्या के कारण लोग ईश्वर तथा आत्मा के सत्यस्वरूप तथा ज्ञान से युक्त मनुष्यों के सत्य वैदिक कर्तव्यों को भी भूल गये थे। वेदों के अध्ययन व प्रचार की समुचित व्यवस्था न होने के कारण अविद्या व अविद्या से उत्पन्न होने वाले अन्धविश्वास तथा सामाजिक कुरीतियों में वृद्धि होती गई। सृष्टि के आदि काल से आर्यावर्त की सीमाओं में वर्तमान के अनेक देश आते थे। आर्यावर्त के अन्तर्गत राज्य भी सिकुड़ कर छोटे छोटे स्वतन्त्र राज्यों व रियासतों में परिणत हो गये थे। अन्धविश्वासों एवं सामाजिक कुरीतियों के कारण मानव का निजी जीवन अविद्या से युक्त था। इसके कारण संगठित रूप से देश्ज्ञ व समाज की उन्नति के जो प्रयास करने होते हैं वह भी शिथिल व न्यून होते थे जिससे देश असंगठित होता गया और देश में अविद्या पर आधारित अनेक विचारधारायें एवं अनेक धार्मिक मत व सम्प्रदाय अस्तित्व में आते रहे।

मध्यकाल व उसके बाद के सभी मत अविद्या के पर्याय अन्धविश्वास, पाखण्ड तथा सामाजिक कुरीतियों से युक्त हो गये। मनुष्य समाज भी नाना प्रकार की जन्मना जातियों एवं ऊंच–नीच की भावनाओं से युक्त हो गया। ऐसे समय में मनुष्य जाति की उन्नति व उसके सुखों की प्राप्ति की सम्भावनायें भी न्यून व समाप्त हो गईं थीं। देश के कुछ भाग पहले यवनों तथा बाद में अंग्रेजों की गुलामी को प्राप्त हुए जिससे देश की जनता नरक के समान दुःखों से युक्त जीवन जीने पर विवश हुई। ऐसे अज्ञानता वा अविद्या के समय में ऋषि दयानन्द (1825–1883) का आविर्भाव हुआ। ऋषि दयानन्द एक पौराणिक शिवभक्त परिवार में जन्में थे। अपनी आयु के चौदहवें वर्ष में शिवरात्रि पर्व पर मूर्तिपूजा व व्रत उपवास करते हुए उन्हें बोध की प्राप्ति हुई थी। उन्हें बोध हुआ कि सच्चे शिव व उसकी मूर्ति के स्वरूपों व गुण, कर्म व स्वभावों में अन्तर है। जिस सच्चे शिव की लोग उपासना करते हैं वह उसकी मूर्ति बनाकर परम्परागत विधि से पूजा करने पर वह उपासना सत्य सिद्ध नहीं होती। उनके मन में मूर्तिपूजा के प्रति अनेक आशंकायें उत्पन्न हुईं। वह उनके समाधान अपने विद्वान पिता तथा विद्वान पण्डितों से जानना चाहते थे परन्तु किसी से उनका समाधान नहीं हुआ। कुछ काल बाद अपनी बहिन व चाचा की मृत्यु होने पर उन्हें मृत्यु

की औषधि को जानने का बोध हुआ था। अपने प्रश्नों के उत्तर न मिलने और इनके अनुसंधान में अपने माता–पिता व परिवार का सहयोग न मिलने के कारण उन्होंने आयु के बाइसवें वर्ष में अपने पितृगृह का त्याग कर दिया था और अपना जीवन अपनी आशंकाओं को दूर करने सहित सच्चे शिव व ईश्वर की खोज, उसकी प्राप्ति, ईश्वरीय ज्ञान वेद के अध्ययन व प्रचार सहित देश व समाज सुधार के कार्यों में व्यतीत किया।

ऋषि दयानन्द योग व वेद विद्या में प्रवीण होकर ऋषि बने थे। उन्होंने अपने तप व अध्ययन तथा सत्यासत्य की परीक्षा से सत्य व असत्य के यथार्थस्वरूप को जान लिया था। उन्होंने जाना था कि मनुष्यों के सभी दुःखों का कारण अविद्या वा वेदों के सत्य ज्ञान को न जानना है। उन्होंने अनुभव किया था कि वेदों के सत्यार्थ को जानकर तथा उसके अनुरूप सभी देश व विश्ववासियों का जीवन बनाकर ही अविद्या को दूर कर विश्व के सभी मनुष्यों के जीवन को सत्य ज्ञान, शारीरिक व आत्मिक बल सहित सुख व शान्ति से युक्त किया जा सकता है। इसी कार्य को उन्होंने पूर्ण निष्पक्षता तथा अपने प्राणों को जोखिम में डाल कर किया जिसका पूरे विश्व पर सकारात्मक प्रभाव हुआ। उनके कार्यों से पूरे विश्व में ही वेदों व विद्या के सत्यस्वरूप का प्रकाश हुआ। योग विद्या में निष्णात होने तथा विश्व में वेदों का प्रचार कर अविद्या को दूर करने के प्रयास के कारण से ही ऋषि दयानन्द विश्व के सभी महापुरुषों से भिन्न एवं ज्येष्ठ हैं। उनके जीवन तथा कार्यों को जानकर, वेदाध्ययन कर तथा वैदिक साहित्य उपनिषद, दर्शन, विशुद्ध मनुस्मृति, सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कार विधि एवं आर्याभिविनय आदि ग्रन्थों का अध्ययन कर ही मनुष्य जीवन को विद्या से युक्त तथा अविद्या से मुक्त किया जा सकता है। विद्या की प्राप्ति कर ईश्वर का साक्षात्कार करना तथा अमृत व मोक्ष को प्राप्त होना ही मनुष्य जीवन व जीवात्मा का मुख्य लक्ष्य होता है। ऋषि दयानन्द ने वेदप्रचार कर सभी मनुष्यों को ईश्वर का सत्य ज्ञान कराया। उन्होंने मनुष्यों को ईश्वर की प्राप्ति, उसका साक्षात्कार व प्रत्यक्ष कराने सहित मोक्ष प्राप्ति में अग्रसर कर जीवन को कृतकार्य होने का ज्ञान कराया। इस कारण से ऋषि दयानन्द विश्व के अद्वितीय महापुरुष, महामानव, वेद ऋषि तथा ईश्वर के एक महान पुत्र हैं।

ऋषि दयानन्द को अपने जीवन के चौदहवें वर्ष में शिवरात्रि के दिन ईश्वर के सत्यस्वरूप को जानकर उपासना करने का बोध हुआ था। इसी का परिणाम उनके ईश्वर सिद्ध योगी बनने सहित वेद वेदांगों का अपूर्व विद्वान व ऋषि बनने के रूप में हमारे सम्मुख आया। ऋषि दयानन्द सच्चे वेद प्रचारक, ईश्वर के सत्यस्वरूप व गुण–कर्म–स्वभाव का ज्ञान कराने वाले, सोलह संस्कारों से युक्त जीवन बनाने हेतु संस्कार विधि ग्रन्थ लिखकर देने वाले, समाज में प्रचलित सभी अन्धविश्वासों तथा पाखण्डों सहित सभी मिथ्या व कृत्रिम सामाजिक मान्यताओं को दूर करने वाले, पूर्ण युवावस्था में कन्या व वर के गुण, कर्म व स्वभाव के अनुसार विवाह का विधान करने वाले, विधवाओं व महिलाओं के प्रति विशेष सम्मान एवं आदर की भावना रखने वाले, महिलाओं पर मध्यकाल में हुए अन्यायों को दूर कर उनके वेदाध्ययन एवं नारी सम्मान का अधिकार दिलाने वाले, देश को आजादी का मन्त्र देने वाले तथा जीवन के सभी क्षेत्रों से अविद्या व मिथ्या मान्यताओं को दूर कर सत्य कल्याणप्रद वैदिक मान्यताओं को प्रचलित कराने वाले अपूर्व महापुरुष हुए हैं। उनके जीवन चरित्र सहित उनके प्रमुख ग्रन्थों सत्यार्थप्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका, संस्कारविधि, आर्याभिविनय सहित वेदभाष्य को पढ़कर उनके ज्ञान व व्यक्तित्व से परिचित हुआ जा सकता है। ऋषि दयानन्द अपने व पराये की भावना से सर्वथा मुक्त एवं पक्षपातरहित महात्मा व ऋषि थे। उन्होंने स्वमत व परकीय मतों के प्रति किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया।

'वेद मनीशी पं. गुरुदत्त विद्यार्थी का जीवन और कार्य'

&Mk- Hkokuhyky Hkkjrh;

अनुपम मेधावी पं. गुरुदत्त जी का जन्म 26 अप्रैल 1868 को मुलतान (पाकिस्तान) में श्री रामकृष्ण जी के यहां हुआ। उनकी उच्च शिक्षा लाहौर में हुई जहां विज्ञान विषय लेकर उन्होंने एम.ए. की परीक्षा पास की। उन दिनों विज्ञान के स्नातकों को भी एम.ए. की ही उपाधि दी जाती थी। 20 जून 1880 को वे लाहौर आर्यसमाज के सभासद् बने और स्वामी दयानन्द के रुग्ण होने पर उनकी सेवा सुश्रुषा के लिए उक्त आर्यसमाज ने उन्हें लाला जीवनदास के साथ अजमेर भेजा। स्वामी दयानन्द के देहान्त के पश्चात् जब लाहौर के आर्य पुरुषों ने अपने आचार्य की स्मृति में डी.ए.वी. कालेज स्थापित करने का संकल्प किया, तो पं. गुरुदत्त इस कार्य की पूर्ति में सर्वात्मना लग गये। यों तो इनका सम्पूर्ण जीवन ही आर्यसमाज के कार्य के लिए समर्पित था, किन्तु उनकी प्रबल इच्छा रही कि स्वामी दयानन्द के स्मारक रूप डी.ए.वी. कालेज लाहौर में वेदादि शास्त्रों तथा संस्कृत भाषा एवं साहित्य का उच्च स्तरीय अध्ययन–अध्यापन प्रचलित किया जाये। इसके लिये उन्हें अपने साथियों और सहयोगियों के साथ संघर्ष भी करना पड़ा। 19 मार्च 1890 को अल्पावस्था में ही पं. गुरुदत्त का निधन हो गया। जुलाई 1889 में पं. गुरुदत्त ने वैदिक मैगजीन नामक एक उच्च कोटि की शोध पत्रिका निकाली, जिसके कुछ ही अंक निकल पाये। उनका समस्त लेखन अंग्रेजी में हुआ।

लेखन कार्य–वैदिक संज्ञा विज्ञान–1. (The Terminology of the Vedas) वेदार्थ को समझने में सहायक इस ग्रन्थ को आक्सफोर्ड विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में रखा गया था

(1888), यह आर्य पत्रिका के 11 जुलाई, 1 अगस्त, 19 सितम्बर तथा 10 अक्टूबर 1882 के अंकों में धारावाही छपा था, 2. The Terminology of the Vedas and the European Scholars (1889), यह उक्त पुस्तक का ही परिशिष्ट है जिसमें प्रो. मैक्समूलर तथा प्रो. मोनियर विलियम्स की वेदार्थ विषयक धारणाओं का खण्डन किया गया है, 3. ईश, मुण्डक तथा माण्डूक्य उपनिषदों की व्याख्या, 4. Vedic Text No. 1, 2, 3 इनके अन्तर्गत ऋग्वेद 1.2.1. ऋग्वेद 1.2.7 तथा ऋग्वेद 1.50. इन तीन मंत्रों की वैज्ञानिक व्याख्या की गई है। कतिपय अन्य ग्रन्थ –Evidences of the Human Spirit (1889), Pecuniomania (1889), The Realities of Inner

Life, Criticism of Monier William, Indian Wisdom (1893), A Reply to Mr. Williams' Criticism on Niyoga (1890).

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी के कुछ अन्य स्फुट लेख–

1. Conscience and the Vedas, with reference to the Brahmo Samaj, 2. Religious Sermons, (Criticism of a book entitled Short Sermons and Essays on Religious subjects by a Punjabi Brahmo.), 3. A Reply to some Criticism of Svamiji's veda Bhashya., 4. Origin of thought and Language: 1. Virjanand Press Labore 1888, 2. Arya Society, Lahore 1893, 5. Man's Progress Downwards., 6. Righteousness or Unrighteousness of Flesh Eating., 7. A Reply to Mr. T. Williams' letter on 'Idolatory in the Vedas', 8. Mr. T. Williams on Vedic Test No. 1 (The Atmosphere), 9. Pincot on the Vedas.

पं. गुरुदत्त विद्यार्थी के सभी ग्रन्थों के संग्रहों का विवरण–

1. The Works of Late Pandit Gurudatta Vidyarthi M.A. with a Biographical Sketch. Edited by Shri Jiwan Das Pensioner, Vice-President Lahore Arya Samaj. The Aryan printing publishing & General Trading Co. Ltd. Lahore.

इनके तीन संस्करण निकले––

1897 First Edition, 1902 Second Edition and 1912 3rd Edition.

2. Wisdom of the Rishi or Works of Pt. Gurudatta Vidyarthi M.A. with a Biographical Sketch by Pt. Chamupati M.A. Edited by (Swami) Vedanand Tirth. Rajpal & Sons LAHORE 1912 and Sarvadeshik Pustakalya Delhi 1959.

उक्त ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद गुरुदत्त लेखावली शीर्षक से पं. भगवद्दत्त तथा पं. सन्तराम ने संयुक्त रूप से किया था। इसके अब तक तीन संस्करण (1918 में लाहौर से, 1960 में गोविन्दराम हासानन्द से तथा 1986 में वेद प्रचारक मण्डल नई दिल्ली से) निकल चुके हैं।

डा. रामप्रकाश जी ने पं. गुरुदत्त विद्यार्थी जी की एक खोजपूर्ण जीवनी भी लिखी है।

'श्रद्धांजलि'

'ऋषिभक्त आर्य विद्वान श्री दौलतसिंह राणा को श्रद्धांजलि'

देहरादून निवासी ऋषिभक्त एवं आर्य विद्वान श्री दौलत सिंह राणा का एक सप्ताह की अल्पकालीन बीमारी के बाद दिनांक 28 जनवरी, 2021 को 84 वर्ष की आयु में निधन हो गया। वह कोरोना रोग से प्रभावित थे।

श्री राणा जी के परिवार में उनकी धर्मपत्नी श्रीमती उषा राणा एवं एक पुत्री हैं। राणा जी ने ऋषि दयानन्द एवं आर्यसमाज की विचारधारा को आत्मसात किया था तथा उसका निष्ठापूर्वक पालन करते थे।

श्री दौलत सिंह राणा ने कुछ वर्ष पहले भारत के राष्ट्रपति डा. अब्दुल कलाम जी पर एक प्रभावशाली कविता लिखकर उनकी उपस्थिति में देहरादून के रैफल होम के एक आयोजन में सुनाई थी जिसे सुनकर राष्ट्रपति महोदय अपने आसन से उठकर उनके पास गये थे और उनकी पीठ थपथपाते हुए उनसे कहा था 'वैल डन राणा जी'।

राणा जी बचपन में गलित कुष्ठ रोग से प्रभावित हुए थे। एक ईसाई संस्था चेशायर होम द्वारा संचालित चिकित्सालय में उनका निःशुल्क उपचार हुआ था। इसी संस्था की एक कालोनी में उन्होंने लगभग 60 वर्ष से अधिक अवधि तक निवास किया जहां उनके भोजन एवं निवास दोनों का प्रबन्ध था। उनकी पुत्री एक सरकारी बैंक में सीनियर मैनेजर है।

श्री दौलतसिंह राणा जी एक सच्चे ऋषिभक्त वैदिक धर्म के दीवाने थे। उनको वैदिक साधन आश्रम तपोवन की ओर से अश्रुपूरित श्रद्धांजलि समर्पित है।

ओ३म्

वैदिक साधन आश्रम

तपोवन, नालापानी, देहरादून

द्वारा आयोजित

ग्रीष्मोत्सव

बुद्धवार, 12 मई 2021 से
रविवार, 16 मई 2021 तक

आर्य समाज के संस्थापक,
वेदों के उद्धारक एवं युग प्रवर्तक

महर्षि दयानन्द सरस्वती

(1825-1883)

आश्रम सोसाइटी के सदस्यगण : दर्शन कुमार अग्निहोत्री, ई॰ प्रेम प्रकाश शर्मा, आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य, स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी, सुधीर कुमार माटा, मंजीत सिंह, विक्रम बावा, योगेश मुंजाल, डॉ॰ शशि वर्मा, महेन्द्र सिंह चौहान, योगराज अरोड़ा, विजय कुमार, रामभज मदान, विनीश आहुजा, अशोक वर्मा एवं समस्त सदस्य वैदिक साधन आश्रम सोसायटी, देहरादून।

कार्यक्रम के प्रमुख सहयोगी : रणजीत राय कपूर, जीतेन्द्र तोमर, रमेश चन्द, सुशील कुमार भाटिया, कुलदीप सिंह चौहान।

Email : vaidicsadanashram88@gmail.com Web : www.vaidicsadhanashramdehradun.com

ग्रीष्मोत्सव, योग साधना एवं अथर्ववेद यज्ञ

c'kk[k 'kDy ifrink ls o'kk[k lfn prFkh foØeh lEor 2078 rd
rnu|lkj c/kokj 12 ebl ls jfookj 16 ebl 2021 rd euk;k tk;xkA

योग साधना निर्देशक	:	स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी सरस्वती
यज्ञ के ब्रह्मा	:	Lokeh eqäkuUn th ljLorh
वैदिक विद्वान	:	पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी, डॉ0 धन्नजय जी आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य, डॉ0 सुखदा सोलंकी जी, आचार्य डा0 अन्नपूर्णा जी, श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी, पं. सूरत राम शर्मा जी, पं. वेद वसु शास्त्री जी, योगाचार्य डॉ0 विनोद कुमार शर्मा जी, योगाचार्य श्री ओमप्रकाश मस्करा जी
वेद पाठ	:	श्रीमद दयानन्द आर्ष ज्योर्तिमठ गुरूकुल पौंधा के ब्रह्मचारियों द्वारा
यज्ञ तथा अन्य कार्यक्रमों के संचालक	:	पंडित सूरतराम शर्मा जी, श्री शैलेश मुनि सत्यार्थी जी एवं डॉ. अनिल आर्य जी
भजनोपदेशक	:	श्री दिनेश आर्य पथिक जी, पं रूवेल सिंह आर्यमुनि जी, एवं श्रीमती मीनाक्षी पंवार जी

c/kokj 12 ebl ls jfookj 16 ebl 2021 rd çfrfnu

योग साधना : प्रातः 5.00 से 6.00 बजे तक संध्या एवं यज्ञ : प्रातः 6.30 से 8.30 बजे तक भजन एवं प्रवचन : प्रातः 10 से 12 बजे तक	यज्ञ एवं संध्या : प्रातः 3.30 से 6.00 बजे तक भजन एवं प्रवचन : रात्रि 07.30 से 09.30 बजे तक

c/kokj fnukd 12 ebl 2021

ध्वजारोहण	:	प्रातः 9:00 बजे। स्वामी आर्यवेश जी (प्रधान सार्वदेशिक आर्य प्रतिनिधि सभा)
यज्ञ के यजमान	:	श्री विजय सचदेवा एवं परिवार
कार्यक्रम के अध्यक्ष	:	स्वामी आर्यवेश जी
भजन	:	श्री दिनेश आर्य पथिक जी, श्री रूवेल सिंह आर्यमुनि
प्रवचन विषय	:	lkekftd mUufr esa vk;Z lekt dh Hkwfedk]
वक्ता प्रात सत्र	:	पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ, आचार्य आशीष जी
वक्ता सायंकाल सत्र	:	स्वामी मुक्तानन्द सरस्वती जी, श्री शैलेश मुनि सत्यार्थी जी

x| : okj fnukd 13 ebl 2021

कार्यक्रम के अध्यक्ष : प्रो0 डॉ0 सुनील कुमार जोशी (उपकुलपति उत्तराखण्ड़ आयुर्वेदिक विश्वविद्यालय, देहरादून)

भजन : श्री दिनेश आर्य पथिक जी, पं. उम्मेद सिंह विशारद जी,
श्री रमेश चन्द्र स्नेही जी,

प्रवचन विषय : 'kkjhfjd mUufr d ofnd mik;

वक्ता प्रातः सत्र : योगाचार्य श्री ओमप्रकाश मस्करा जी,
योगाचार्य डा0 विनोद कुमार शर्मा जी,

वक्ता सांयकाल सत्र : पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी, आचार्य डा0 धन्नजय जी,

'kØokj] fnukd 14 ebl 2021

मुख्य अतिथि : श्रीमती बृजबाला यति जी एवं श्रीमती सुमन यति जी

कार्यक्रम की अध्यक्ष : श्रीमती सुरेन्द्र अरोड़ा जी

भजन : श्रीमती मीनाक्षी पंवार जी एवं द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरूकुल की ब्रह्मचारिणियाँ

प्रवचन विषय : ;okvk e u'k dh c<rh iofr] n"ifj.kke ,o lek/kku

वक्ता प्रातः सत्र : आचार्य डा0 अन्नपूर्णा जी, डा0 सुखदा सोलंकी जी,
पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी

सांयकाल विषय : jk"V fuek.k e ukjh 'kfä dh Hkfedk

वक्ता सांयकाल सत्र : पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी एवं ब्रह्मचारिणी दीप्ति जी

'kfuokj] 15 ebl 2021

कार्यक्रम के अध्यक्ष : स्वामी चित्तेश्वरानन्द सरस्वती जी

भजन : श्री दिनेश आर्य पथिक जी, श्री रूवेल सिंह आर्यमुनि,
श्री आजाद लहरी जी

प्रवचन विषय : ekuo thou e v/;kRe dk egRo

वक्ता प्रातः सत्र : स्वामी मुक्तानन्द जी, पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ जी, आचार्य आशीष जी

सांयकाल भजन संध्या : श्री दिनेश आर्य पथिक जी एवं श्रीमती मीनाक्षी पंवार जी

jfookj] 16 ebl 2021

समापन समारोह	:	प्रातः 10:00 से 1:00 बजे तक
मुख्य अतिथि	:	Jh l|j'k pUn vk;l th ¼i/kku lkonf'kd lHkk½
विशिष्ट अतिथि	:	Jh nhu n;ky xIrk th] dkydkrk
सभाध्यक्ष	:	Jh n'ku d|ekj vfXugk=h th
कार्यक्रम संचालक	:	डॉ. अनिल आर्य जी
अतिथियों का स्वागत	:	इं0 प्रेम प्रकाश शर्मा (सचिव तपोवन आश्रम),
भजन एवं प्रवचन	:	श्री दिनेश आर्य पथिक जी एवं द्रोणस्थली आर्ष कन्या गुरूकुल की ब्रह्मचारिणियों द्वारा भजन प्रस्तुति
प्रवचन विषय	:	jk"VkRFkku e vk;l lekt dh iklfxdrk ,o ;kxnku
वक्ता	:	पं. उमेश चन्द्र कुलश्रेष्ठ, स्वामी मुक्तानन्द जी सरस्वती, आचार्य आशीष जी, स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी,डा0 अन्नपूर्णा जी
सम्बोधन	:	अतिथियों द्वारा सम्बोधन
धन्यवाद ज्ञापन	:	आश्रम के अध्यक्ष श्री दर्शन कुमार अग्निहोत्री जी द्वारा धन्यवाद ज्ञापन
ऋषिलंगर	:	समापन समारोह के उपरान्त ऋषिलंगर की व्यवस्था

vkef=r ofnd fo}ku ,o vfrfFkx.k

डॉ. नवदीप जी, डॉ. कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री जी, श्री मनमोहन आर्य जी, श्री एस. एस. वर्मा जी, श्री गोविन्द सिंह भण्डारी जी, श्री दयाकृष्ण कांडपाल जी, श्री ओमप्रकाश मलिक जी, श्री गणेशपति जी, श्री राजकुमार भण्डारी जी, श्री महावीर सिंह जी, श्री अतर सिंह जी, श्री अजय त्यागी जी, श्री धर्मपाल शर्मा जी, श्री तीरथ कुकरेजा जी, श्री संजय जैन जी, श्री पंकज त्यागी जी, श्री नरेन्द्र वर्मा जी, श्री रामपाल रोहिला जी, श्री अरविन्द शर्मा जी, श्री दयानन्द तिवारी जी, डॉ. बृजपाल आर्य जी, श्री नरेन्द्र साहनी जी, श्री ओमप्रकाश महेन्द्रू जी, श्रीमती कान्ता काम्बोज जी, श्री ज्ञानचन्द गुप्ता जी, श्री भगवान सिंह जी, श्री शत्रुघन कुमार मौर्य जी, श्री जीतेन्द्र सिंह तोमर जी, श्री महिपाल सिंह जी, श्री रमेश भारती जी, श्री उम्मेद सिंह विशारद जी, श्री रणजीत राय कपूर जी, श्रीमती ऊषा जी, डॉ. विश्वमित्र शास्त्री जी, श्री ओमप्रकाश जी, श्री मानपाल सिंह जी, श्री दिनेश आर्य जी, श्री हाकम सिंह जी, श्रीमती पुष्पा गुसाईं, श्री वेद प्रकाश धीमान जी, श्री प्रदीप दत्ता जी, श्री पी.डी. गुप्ता जी, श्री केसर सिंह जी, श्री रतन सिंह जी, श्री महिपाल सिंह त्यागी जी, श्री रामबाबू सैनी जी, श्री चमनलाल रामपाल जी, श्रीमती सविता अग्रवाल जी एवं सभी आर्यसमाजों के प्रधान, मंत्री एवं कोषाध्यक्ष

fuond

दर्शन कुमार अग्निहोत्री, ई. प्रेम प्रकाश शर्मा, आचार्य आशीष जी दर्शनाचार्य, स्वामी चित्तेश्वरानन्द जी, सुधीर कुमार माटा, मंजीत सिंह, विक्रम बावा, योगेश मुंजाल, अशोक वर्मा, डॉ. शशि वर्मा, महेन्द्र सिंह चौहान, योगराज अरोड़ा, विजय कुमार, रामभज मदान, विनीश आहूजा

,o lelr lnL;] ofnd lk/ku vkJe lklkbVh

&jkeuoeh io ij&

‘बाल्मीकि के राम’

&Lo- j?kqukFk izlkn ikBd

तपस्वी वाल्मीकि मुनि ने एक बार तप और स्वाध्याय में लगे हुए विद्वान् नारद से पूछा—

‘हे मुनिवर, इस समय संसार में गुणवान्, पराक्रमी, धर्मज्ञ, कृतज्ञ, सत्यवक्ता और अपने व्रत में दृढ़ पुरुष कौन हैं? सदाचार से युक्त सब प्राणियों के कल्याण में तत्पर, विद्वान्, सामर्थ्यशाली और देखने में सब से सुन्दर पुरुष कौन है? जो तपस्वी तो हो परन्तु क्रोधी न हो। तेजस्वी तो हो परन्तु ईर्ष्यालु न हो और इन सब दया, अक्रोध आदि गुणों से युक्त होते हुए भी जब रोष आ जाये तो जिस के सामने देवजन भी कांपने लगें। हे तपेश्वर, यदि आप किसी ऐसे महापुरुष को जानते हों तो उस का वृतान्त मुझ को बताइये क्योंकि आप त्रिलोक भ्रमण करने वाले हैं।’

वाल्मीकि मुनि के प्रश्न का उत्तर देते हुए नारद मुनि ने कहा कि अयोध्या में इक्ष्वाकु वंश में उत्पन्न हुआ राम नाम से जो प्रसिद्ध राजा राज करता है, वह उन सब गुणों से युक्त है जिनका आपने उल्लेख किया है। नारद मुनि ने राम का तब तक का सम्पूर्ण चरित्र भी संक्षेप में महर्षि को सुना दिया।

राम के उदात्त चरित्र को लिखने की प्रेरणा महर्षि वाल्मीकि को क्यों कर हुई, इस का विवरण वाल्मीकि रामायण के बालकांड में भावपूर्ण शब्दों में अंकित है। वियोग जन्य क्रोंच पक्षी के करुणक्रन्दन से द्रवीभूत हुए महर्षि के मुख से निकली ‘मा निषाद’—ये छन्दोबद्ध पंक्तियां ही रामायण की रचना का प्रेरक कारण बनीं।

अपनी रामायण में महर्षि ने उपर्युक्त सब प्रश्नों का विस्तार से उत्तर दिया है जो कि उन्होंने नारद मुनि से किये थे। राम के पावन चरित्र का जितना अच्छा और संक्षिप्त विवरण उन प्रश्नों में है उतना अन्यत्र मिलना कठिन है। सारी रामायण को उन्हीं प्रश्नों की विशद व्याख्या कह सकते हैं।

उन प्रश्नों को एक—एक करके लेते जाइये और राम कथा से उन का उत्तर लेते जाइये। पहला प्रश्न यह है कि ऐसा व्यक्ति कौन सा है जो गुणवान् भी हो और पराक्रमी भी।

यह बड़ा व्यापक प्रश्न है। बहुत से व्यक्ति गुणवान होते हैं परन्तु वीर्यवान् नहीं होते। बहुत से वीर्यवान् होते हैं परन्तु गुणवान् नहीं होते। राम इन दोनों गुणों का समुच्चय थे। उन में भगवान् के दया और मन्यु इन दोनों गुणों का मिश्रण था। इसी कारण कुछ लोग उन्हें अवतार शब्द से याद करते हैं। हम उन्हें पुरुषोत्तम के नाम से पुकारते हैं, जैसा कि अन्य प्रश्नों की व्याख्या से सुप्रसिद्ध है।

महर्षि प्रश्न पूछते हैं–

''ऐसा कौन–सा व्यक्ति है जो धर्म को जानने वाला हो, किए को मानने वाला, सदा सत्य बोलने वाला और व्रत पर दृढ़ रहने वाला हो? इन शब्दों से धर्मज्ञ एवं गुणवान् की बात की विशद व्याख्या हो जाती है। बाल्मीकि के राम के जिस रूप का पाठक के मन पर चित्र अंकित होता है, वह धर्म को जानने वाला है। प्रत्येक संकट के समय वह इस प्रश्न पर विचार करता है कि धर्म वा कर्तव्य क्या है? आंखें बन्द करके परिस्थितियों के पीछे नहीं भागता।''

जब कैकेयी ने महाराज दशरथ के वचन को सत्य सिद्ध करने के लिए वन–गमन की सूचना दी तब राम ने कर्तव्य को ही सर्वोपरि स्थान दिया। जब भरत उन्हें वन से लौटाने के लिए गये और मन्त्रियों तक ने उन्हें अयोध्या लौटने की प्रेरणा की तब भी उन्होंने कर्तव्य को सर्वोपरि रखा। जब जाबाल ने उन के समक्ष पार्थिव प्रलोभन रखकर तर्क वितर्क के द्वारा उन का घर लौटना समुचित सिद्ध करने की चेष्टा की तब उन्होंने जो उत्तर दिए वे धर्म के इतिहास में सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेंगे। उन्होंने कहा–

''अपने को वीर कहलाने वाला व्यक्ति कुलीन है या अकुलीन है, पवित्र है या अपवित्र, यह उसके चरित्र से ही विदित हो सकता है।

यदि मैं धर्म का ढोंग करूं परन्तु आचरण करूं धर्म के विरुद्ध तो कैसे समझदार पुरुष मेरा मान करेगा। उस दशा में मैं कुल का कलंक ही माना जाऊंगा।''

इस प्रश्न का दूसरा भाग यह है कि किए को मानने वाला कौन है? यदि कृतज्ञता का आदर्श देखना हो तो राम को देखो।

सुग्रीव और विभीषण ने राम की संकट के समय सहायता की। राम ने उन दोनों का संकट निवारण करके उन दोनों को ही राज्य दिलाकर उस सहायता का जो भव्य बदला दिया था, वह राम की कृतज्ञता की भावना का ज्वलन्त प्रतीक है।

इस प्रश्न का तीसरा भाग सत्य से सम्बद्ध है। राम की सत्यवादिता ने सत्य को गौरवान्वित किया था, यदि यह कहा जाये तो इस में अत्युक्ति न होगी। राम सत्य के जीते जागते स्वरूप थे। यदि राम कुछ हैं तो वह सत्य ही हैं। सत्य कहना और सत्य करना–ये दो राम के मुख्य गुण थे। राम के दो वाक्य ही उन के अपने चरित्र का सांगोपांग चित्रण कर देते हैं। महाराज दशरथ के समक्ष कैकेयी ने जब राम को वनवास जाने का कठोर आदेश देने में कुछ आगा पीछा किया तो राम ने कहा था–

''हे दवि, राजा क्या चाहते हैं, यह मुझे बताइये। मैं उसे पूरा करुंगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है। राम किसी बात को दूसरी बार नहीं कहता।''

''न आज तक मैंने कभी झूठ बोला है और न आगे कभी बोलूंगा।'' वस्तुतः सत्य और उस के पालन में दृढ़ता राम के भव्य जीवन के दो प्रधान तत्व हैं।

अगला प्रश्न है कि जो तपस्वी तो हो परन्तु क्रोधी न हो, तेजस्वी तो हो परन्तु ईर्ष्यालु न हो।

तपस्वियों को क्रोधावेश में शाप देते हुए तो बहुत कुछ सुना जाता है, वरदान देते हुए कम। इसलिए कि उन के तप का गृहस्थीजन के समक्ष वैसा महत्व नहीं रहता जैसा रहना चाहिए और तप के साथ अक्रोध का सम्मिश्रण रहने से वही महत्व रहता है। ये दोनों परस्पर विरोधी गुण एक–दूसरे की आभा को बिगाड़ने वाले नहीं, अपितु मिलकर चित्र को सुन्दर एवं पूरा बनाने में सहायक होते हैं।

राम में सत्य है, शक्ति है, क्षमा है, कृतज्ञता है, क्रोध नहीं है और न ईर्ष्या–द्वेष है। तब तो उसे शांत और शीतल होना चाहिए। फिर किसी दुष्ट को उस से डरने की क्या आवश्यकता है? परन्तु जिस व्यक्ति की शान्ति में अग्नि अन्तर्हित नहीं, वह संसार में किसी काम का शासक नहीं हो सकता। उसे शायद पुरुष तो कह सकें, पुरुषोत्तम नहीं कह सकते। वाल्मीकि मुनि ने

सारी रामायण में अपने अन्तिम प्रश्न का उत्तर बड़ी सुन्दरता से दिया है। प्रश्न यह है––

''वह कौन है कि इन सब गुणों के होते हुए भी जब रोष आ जाये तब देवता भी उस के सामने कांपने लगें?''

क्रोध निकृष्ट भावना है। जिस मनुष्य को क्रोध नही आता वह मूर्ख होता है और जो क्रोध पर काबू रखता है वह बुद्धिमान् होता है, परन्तु मन्यु क्रोध से भी अधिक उदात्त भावना होती है जो मानव के तेज की सूचक होती है। जो मुनष्य अन्याय, असत्य या अत्याचार को सहन कर लेता है, वह अपने व्यक्तित्व पर अत्याचार करता है और उस के क्षमा, दया आदि गुण दोष रूप में दीखने लगते हैं, क्योंकि ये कायरता के रूपान्तर होते हैं। धर्मज्ञ राम की शक्ति का वर्णन करते हुए रावण की सभा में विभाषण ने कहा था।

'इक्ष्वाकु वंश का अवधेश राम धर्मात्मा है, यह समझकर निःशंक नहीं होना। यह दुष्टों को दण्ड देने की शक्ति रखता है। इस कारण उस के सामने तो देवगण भी हतबुद्धि हो जाते हैं, मनुष्यों या राक्षसों की तो कथा ही क्या है?'

रावण के वध के पश्चात् जब भगवती सीता विभीषण के साथ राम के निकट पहुंची, तब राम ने जो शब्द कहे थे, उन में धर्मज्ञ राम का रौद्ररूप प्रतिबिम्बित हो रहा था। उन्होंने कहा था––

''हमने अपने शत्रु के साथ ही अपमान को भी मारकर गिरा दिया, आज हमारा पराक्रम प्रकाशित हुआ। आज हमारी प्रतिज्ञा पूरी हुई। जो मनुष्य अपने अपमान को तेज द्वारा दूर नहीं करता, उस अल्प तेजस्वी मानव का पुरुषार्थ व्यर्थ है।''

इस प्रकार महर्षि वाल्मीकि ने नारद मुनि से जो प्रश्न किए थे, सम्पूर्ण रामायण में उन के उत्तर देकर संसार के सामने मनुष्यत्व का एक अमर आदर्श स्थापित कर दिया। वस्तुतः राम के ऊंचे आदर्श को देखकर अनायास ही यूरोप के प्रसिद्ध विद्वान ग्रिफिथ ने लिखा था, 'वाल्मीकि रामायण प्रत्येक युग और प्रत्येक देश के साहित्य को यह चुनौती दे सकती है कि लाओ राम और सीता के सदृश पूर्ण आदर्श चरित्र का नमूना पेश करो।'

चरित्र की उस पूर्णता के कारण राम को हम पुरुषोत्तम वा मर्यादा पुरुषोत्तम कहकर पूजते हैं और राम एवं सीता के पावन चरित्र के कारण ही वाल्मीकि रामायण के विषय में ब्रह्मा का यह आशीर्वाद सफल हो रहा है कि––

यावत्स्थास्यन्ति गिरयः सरितश्च महीतले।
तावद्रामायणकथा लोकेषु प्रचरिष्यति।।

जब तक संसार में सभी पर्वत और नदियां विद्यमान रहेंगी तब तक तुम्हारी (वाल्मीकि मुनि की) रची रामकथा का प्रचार होगा।

पवमान मासिक पत्रिका के सभी ग्राहकों को सूचित किया जाता है कि जिन ग्राहकों ने पिछले कुछ महीने में पत्रिका का वार्षिक/आजीवन शुल्क ऑनलाइन फण्ड ट्रान्सफर के माध्यम से पवमान के कैनरा बैंक खाते में जमा किये है उन सबसे प्रार्थना है कि अपने जमा किये गये शुल्क की जानकारी आश्रम कार्यालय के दूरभाष–0135–2787001 पर सम्पर्क कर जरूर दें। आप अपने जमा किए गये शुल्क का विवरण मो0–7895978734 पर भी वाट्स–एप के माध्यम से भेज सकते हैं।

पत्रिका के अन्य ग्राहकों से भी अनुरोध है कि वे पिछली पत्रिकाओं में छपे विवरण के अनुसार पत्रिका का शुल्क शीघ्र–अतिशीघ्र आश्रम के कैनरा बैंक खाते, खाता संख्या–2162101021169, आई.एफ.एस. सी. कोड़–CNRB0002162, में जमा करने का कष्ट करें। धन्यवाद

&i- y[kjke th d 124 o cfynku fnol 6 ekp ij&

'पं. लेखराम की ऋषि दयानन्द से भेंट का प्रभाव'

&euekgu vk;

पंडित लेखराम जी स्वामी दयानन्द जी के प्रारम्भ के प्रमुख शिष्यों में से एक रहे जो वैदिक धर्म की रक्षा और प्रचार के अपने कार्यों के कारण इतिहास में अमर हैं। उन्होंने 17 मई, सन् 1881 को अजमेर में ऋषि दयानन्द से भेंट की थी और उनसे अपनी शंकाओं का समाधान प्राप्त किया था। ऋषि दयानन्द से अपनी भेंट का वृतान्त उन्होंने अपने शब्दों में ही वर्णन किया है। उनके अनुसार 11 मई सन् 1881 को 'संवाददाता' (पं. लेखराम) पेशावर से स्वामीजी के दर्शनों के निमित्त चलकर 16 की रात को अजमेर पहुंचा और स्टेशन के समीप वाली सराय में डेरा किया और 17 मई को प्रातःकाल सेठ जी के बागीचे में जाकर स्वामी जी का दर्शन प्राप्त किया। उनके (स्वामी दयानन्द जी के) दर्शन से मार्ग के समस्त कष्टों को भूल गया और उनके सत्योपदेशों से समस्त गुत्थियां सुलझ गईं। जयपुर में एक बंगाली सज्जन ने मुझ (पं. लेखराम जी) से प्रश्न किया था कि आकाश भी व्यापक है और ब्रह्म भी, दो व्यापक (सत्तायें) किस प्रकार इकट्ठे (आत्मा की भीतर परमात्मा) रह सकते हैं? मुझसे इसका कुछ उत्तर न बन पाया। मैंने यही प्रश्न स्वामीजी से पूछा। उन्होंने एक पत्थर उठाकर कहा कि इसमें अग्नि व्यापक है या नहीं? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर कहा कि मिट्टी? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि जल? मैंने कहा कि व्यापक है। फिर पूछा कि आकाश और वायु? मैंने कहा कि व्यापक हैं। फिर पूछा कि परमात्मा? मैंने कहा कि वह भी व्यापक है। स्वामी जी ने मुझसे कहा कि देखो, कितनी चीजें हैं परन्तु सभी उसमें (पत्थर में) व्यापक हैं। वास्तव में बात यही है कि जो (सत्ता) जिससे सूक्ष्म होती है वह उसमें (दूसरे किंचित स्थूल पदार्थ में) व्यापक हो सकती है। ब्रह्म चूंकि सबसे व अति सूक्ष्म है इसलिए वह सर्वव्यापक है। जिससे मेरी शान्ति हो गई।

मुझसे उन्होंने कहा कि और जो तुम्हारे मन में

सन्देह हों सब निवारण कर लो। मैंने बहुत सोच–विचार कर 10 प्रश्न लिखे जिनमें से तीन मुझे स्मरण हैं, शेष भूल गये।

प्रश्न–जीव–ब्रह्म की भिन्नता में कोई वेद का प्रमाण बतलाइए? उत्तर–यजुर्वेद का 40 वां अध्याय सारा जीव–ब्रह्म का भेद बतलाता है। प्रश्न–अन्य मत के मनुष्यों को शुद्ध करना चाहिए या नहीं। उत्तर–अवश्य शुद्ध करना चाहिए। प्रश्न–विद्युत क्या वस्तु है और किस प्रकार उत्पन्न होती है? विद्युत सर्वत्र है और रंगड़ से उत्पन्न होती है। बादलों की विद्युत् बादलों और वायु की रगड़ से उत्पन्न होती है। मुझसे कहा कि 25 वर्ष से पूर्व विवाह न करना। कई ईसाई और जैनी (स्वामी दयानन्द से) प्रश्न करने आते थे, परन्तु शीघ्र निरुत्तर हो जाते थे।

एक हिन्दू नवयुवक–जिसके विचार पूर्णतया ईसाई मत की ओर झुके हुए थे––प्रतिदिन प्रश्न करने आता और शान्त होकर जाता था। अन्त में वह पूरी शान्ति पाने के पश्चात् ईसाई मत से विरक्त होकर वैदिक धर्मानुयायी हो गया। व्याख्यानों में सैकड़ों मनुष्य आते और लाभ उठाते जाते थे। 24 मई सन् 1881 को दोपहर के समय महाराज जी से विदा होने पर मैंने निवेदन किया कि आप मुझे अपना कोई चिन्ह प्रदान करें। (स्वामी जी ने मुझे) चिन्ह–स्वरुप अष्टाध्यायी की एक प्रति प्रदान की जो अभी तक पेशावर समाज में विद्यमान है। तत्पश्चात् उनके चरणों को हाथ लगाकर नमस्ते करके दास (पं. लेखराम) वहां से विदा होकर चला आया।

पंडित लेखराम जी ने पहली बात यह बताई है कि उन्हें पेशावर से अजमेर पहुंचने में पांच दिन का समय लगा। इस यात्रा से उन्हें थकान हुई परन्तु वह 17 मई, 1881 को स्वामी दयानन्द जी के दर्शन से दूर हो गई। इन पंक्तियों के लेखक को लगता है कि पं. लेखराम जी ने स्वामी जी के व्यक्तित्व व उनकी विद्या के बारे में लोगों से अनेक प्रकार की बातें सुनी होगीं जिससे उन्हें स्वामी जी में उन गुणों की अपेक्षा रही होगी। स्वामी जी के दर्शन और वार्तालाप कर उन्हें उनके बारे में सुनी व समझी पूर्व की सभी बातें सत्य सिद्ध तो हुई ही, अपितु स्वामी जी का श्रेष्ठ व्यवहार देखकर वह उनसे अत्यन्त प्रभावित हुए। ऐसे में थकान का दूर होना स्वाभाविक ही था क्योंकि इस भेंट से उनका मन व हृदय प्रसन्नता से भर गया था। यदि स्वामी दयानन्द उनकी अपेक्षाओं के अनुरूप न होते तो फिर उन्हें अवश्य ग्लानि व क्षोभ हो सकता था जिससे उनकी यात्रा की थकान समाप्त होने के स्थान पर अधिक हो सकती थी। दूसरी महत्वपूर्ण बात जयपुर के बंगाली सज्जन के ईश्वर के व्यापक होने विषयक प्रश्न से सम्बन्ध रखती है। स्वामी जी ने पंडित लेखराम को उनके सभी प्रश्नों व शंकाओं को प्रस्तुत करने व उनका समाधान करवा लेने को कहा था। जयपुर के बंगाली सज्जन ने जो प्रश्न किया था हमें लगता है कि उसका जो उत्तर महर्षि दयानन्द जी ने दिया वह उस समय के अन्य किसी मताचार्य वा धर्माचार्य से मिलना असम्भव था। इससे पं. लेखराम जी की आशंका दूर हो गई। यदि किसी कारण स्वामी दयानन्द जी उन्हें न मिलते और उनके इस प्रश्न का समाधान न होता तो पं. लेखराम जी का भावी जीवन इस प्रश्न का समाधान न मिलने से वह न होता जो ऋषि से इसका समाधान प्राप्त करने पर निर्मित हुआ। हो सकता है कि वह लम्बे समय तक इस प्रश्न के उत्तर पर विचार करते और समाधान न हो पाता। ऐसी स्थिति में हो सकता था कि ईश्वर के वैदिक स्वरुप पर उनका विश्वास स्थिर न रह पाता। अतः महर्षि दयानन्द के दर्शन कर और अपने प्रश्नों का समाधान पाकर पंडित लेखराम जी की वैदिक धर्म में श्रद्धा व निष्ठा में अपूर्व वृद्धि हुई थी, ऐसा हम अनुमान करते हैं। इस घटना से वैदिक धर्म व देश को बहुत लाभ हुआ।

स्वामी दयानन्द जी द्वारा पंडित लेखराम जी का

जीव–ब्रह्म की एकता पर किया गया प्रश्न व उसका समाधान भी महत्वपूर्ण है। ऋषि दयानन्द के अनुसार यजुर्वेद का चालीसवां पूरा अध्याय जीव व ब्रह्म का भेद बताता है। हमें लगता है कि ईश्वर की व्यापकता और जीव–ब्रह्म की एकता विषयक ऋषि दयानन्द जी द्वारा दिए उत्तर स्वामी दयानन्द को वेदों का अपूर्व विद्वान होने सहित ऋषि भी सिद्ध करते हैं। इन प्रश्नों के इस प्रकार के समाधान देने वाला धार्मिक विद्वान व नेता उन दिनों देश में कहीं नहीं थे। पं. लेखराम जी का अगला प्रश्न था कि क्या दूसरे मत के लोगों को शुद्ध करना चाहिये अथवा नहीं? इसका निर्णायक दो टूक उत्तर देकर महर्षि दयानन्द ने देश हित का ऐसा कार्य किया जिससे हमारा देश, वैदिक धर्म और संस्कृति बची हुई है। हम सभी जानते हैं कि वैदिक धर्म का अशुद्ध व विकारयुक्त स्वरुप सनातन पौराणिक मत इस प्रश्न पर हमेशा नकारात्मक और देशहित के विपरीत बातें करता रहा। महाभारत काल के बाद स्वामी दयानन्द ऐसे पहले वैदिक धर्मी विद्वान हुए जिन्होंने शुद्धि का न केवल पूर्ण समर्थन किया अपितु देहरादून में एक मुस्लिम बन्धु मोहम्मद उमर को उसके परिवार सहित उसकी इच्छा से वैदिक धर्मी बनाया था। महाभारत के बाद इतिहास की यह अपूर्व घटना है। हम समझते हैं कि इस प्रश्न की महत्ता व इसके ऋषि दयानन्द के शास्त्रसम्मत उत्तर के कारण भी पंडित लेखराम जी की ऋषि दयानन्द से यह भेंट ऐतिहासिक महत्व की थी। पं. लेखराम जी ने एक प्रश्न विद्युत की उत्पत्ति व अस्तित्व पर किया जिसका ऋषि दयानन्द द्वारा दिया गया उत्तर उनकी गम्भीर वैज्ञानिक सोच को प्रस्तुत करता है। ऋषि दयानन्द जी ने जो उत्तर दिया है वह उनके समय के किसी अन्य धार्मिक प्रवृत्ति के विद्वान से मिलना सम्भव नहीं दिखता। स्वामी जी के समय के सभी धार्मिक विद्वान मूर्तिपूजा और धार्मिक अन्धविश्वासों से ग्रस्त थे। उनकी विद्या व विज्ञान की उन्नति में कोई रुचि नहीं थी, अतः उनसे ऐसा उत्तर नहीं मिल सकता था।

पंडित लेखराम जी ने ईसाई मत से प्रभावित एक हिन्दू युवक की चर्चा कर बताया है कि वह ऋषि दयानन्द के समाधानों से सन्तुष्ट होकर वैदिक धर्मी हो गया था। देहरादून में भी ऐसी ही घटना घटी थी और परिणाम भी इस घटना के अनुसार ही हुआ था। इससे हम अनुमान करते है कि ऋषि दयानन्द के वैदिक धर्म के प्रचार से अनेक लोग विधर्मी होने से बचे जिससे धर्म व संस्कृति की रक्षा हुई है। अन्य मतों के अनेक लोगों द्वारा भी वैदिक मत अपनाया गया जिससे वैदिक धर्म की महत्ता सिद्ध होती है। ऋषि दयानन्द और पंडित लेखराम जी की इस भेंट से ज्ञात होता है कि धर्म के गहन–गम्भीर ज्ञान सहित ऋषि की विज्ञान के विषयों में भी अच्छी गति थी। लगता है कि स्वामी जी से भेंट की इस घटना से पंडित लेखराम जी के वैदिक धर्म व इसके सिद्धान्तों पर विश्वास में और अधिक वृद्धि हुई होगी जिसका परिणाम उनके बाद के जीवन को देखकर अनुमान किया जा सकता है। पंडित जी ने वैदिक धर्म के प्रचार के साथ अनेक लोगों को धर्मान्तरित होने से बचाया जिसका अनुकूल प्रभाव भविष्य के धर्मान्तरणों पर भी पड़ा। उन्होंने महर्षि दयानन्द का एक विशाल एवं खोजपूर्ण जीवन चरित देकर स्वयं को अमर कर दिया है। इस ग्रन्थ के अतिरिक्त भी आपने विपुल साहित्य का निर्माण किया है। पंडित लेखराम ऋषि दयानन्द के मिशन, वैदिक धर्म के प्रचार–प्रसार, के पहले शहीद कहे जा सकते हैं। यदि उनका जीवन लम्बा होता तो वह वैदिक धर्म की और अधिक सेवा करते। उनका आदर्श जीवन युगों युगों तक लोगों को देश और धर्म पर अपना सर्वस्व अर्पित करने की प्रेरणा देता रहेगा। पं. लेखराम जी का बलिदान 6 मार्च सन् 1897 को लाहौर मे हुआ था। उनको उनके बलिदान दिवस पर सादर श्रद्धांजलि।

वैदिक संस्कृति की पुनर्स्थापना की आवश्यकता

&MkO —".k yky Mx

वेद से प्राप्त निर्देश ही वैदिक संस्कृति है। जो महाभारत के युद्ध के समय से कुछ पहले से ही विकार में आने लगी थी।

वेद में एक ही विवाह का निर्देश किया गया है जबकि महाभारत में गान्धार नरेश की सभी पुत्रियों का विवाह धृतराष्ट्र से हुआ और उनकी संतानें गान्धारी कहलाई क्योंकि सबसे बड़ी रानी गान्धारी थी। भीष्म पितामाह ने धृतराष्ट्र का विवाह अनेक राजाओं की पुत्रियों से करवा दिया ताकि हस्तिनापुर के शत्रु कम रहे और हस्तिनापुर का वर्चस्व बना रहे। परिस्थितियों ने भारत को ऐसा घेरा की चक्रवती राज्य अन्यों के अधीन हो गया। क्योंकि उस समय वैदिक मान्यताओं का ह्रास होने लगा था।

सब से पहले मुसलमानों ने इस्लाम चलाया और बाद में अंग्रेजों ने इसाइयत फैलाई और उनसे प्रभावित हिन्दू भी उनके सहयोगी बन गये। फिर भी वैदिक संस्कृति नष्ट नहीं हुई परंतु अनेक मत–सम्प्रदाय बनने के कारण विकार आए। इन विकृतियों को महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने जाना और वैदिक मान्यताओं को स्थापित करने का अथक परिश्रम किया और पुनःस्थापित किया जिसे विरोधियों ने सहन नहीं किया और उन की जीवन लीला समाप्त करने के लिए अनेक प्रयास किये और वो असमय इस संसार से विदा हो गये। परन्तु उनके प्रयत्नों को उनके अनुयायियों ने जारी रखा जो वैदिक संस्कृति को पुनः स्थापित करने के लिये अथक प्रयास कर रहे हैं।

अब भी शुद्ध वैदिक मान्यताओं को मानने वाले समाज में कम लोग हैं। पौराणिक मान्यताओं को मानने वालों की संख्या अधिक है। इस लिए वैदिक मान्यताएं पूर्णतया लागू नहीं हो पा रही है। आधुनिक यूरोपियन संस्कृति का चलन अधिक है। वैदिक संस्कृति का मुख्य स्तम्भ ब्रह्मचर्य है जबकि अश्लीलता की ही बाढ़ आई हुई है। इन में आर्य समाजी परिवार भी अछूते नहीं है। हमें पारिवारिक इकाइयों से और सब आर्य समाजियों को आचार–संहिता बनानी होगी जिसे चालू करने के लिए अनुशासन और दृढ़ता से कार्य करना होगा। हमारे कन्या और पुरूष गुरुकुलों में काफी सुधार आ रहा है यही सुधार परिवारों के युवा और युवतियों पर लागू करना होगा। स्वामी दयानन्द जी के सपनों का भारत उनकी मान्यताओं के दृढ़ता से लागू करने पर ही सम्भव है।

हमारे प्रधानमन्त्री मोदी जी अच्छे निस्वार्थ देश भक्त और देश हित में अच्छा कार्य कर रहे हैं परन्तु वो पक्के पौराणिक हैं, जब तक सच्चे ईश्वर के स्वरूप की पूजा नहीं होगी और वैदिक ज्ञान को राष्ट्र हित में लागू नहीं करेंगे, सफलता मिलना कठिन होगा।

राष्ट्रहित में शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म और शुद्ध उपासना की आवश्यकता है। हमारे प्रधानमंत्री मोदी जी को भी शुद्ध ज्ञान और शुद्ध उपासना की आवश्यकता है, वे कर्मठ तो हैं ही, और शुद्ध वैदिक ज्ञान और शुद्ध वैदिक उपासना अपने कार्यक्रम में और सम्मिलित करने से देश और जाति को उत्थान से कोई नहीं रोक सकता।

वसंत ऋतु में आहार–विहार

&MkW Hkxoku nkl

वसंत ऋतु में प्रकृति में सब जगह सुंदरता और प्रसन्नता दिखाई देती है। वातावरण में हरियाली और रंग–बिरंगे फूलों के साथ–साथ पक्षियों की मधुर आवाज भी अच्छी लगती है। यह ऋतु ग्रीष्म और शीतकाल के बीच की ऋतु है अतः ठंड और गर्मी दोनो का प्रभाव रहता है। दिन मे गर्मी और रात में ठंड हाती है।

'kjhj ij izHkko

इस ऋतु में शरीर में कफ दोष कुपित हो जाता है क्योंकि शिशिर ऋतु में शरीर में एकत्र हुआ कफ वसंत ऋतु में सूर्य से पिघल जाता है। इससे पाचन अग्नि में विकार उत्पन्न हो जाते हैं। इसी कारण जठराग्नि भी मंद हो जाती है तथा जी मिचलाना जैसी शिकायतें प्रकट होती हैं। कफ का प्रकोप होने के कारण यदि कफ में वृद्धि करने वाले पदार्थों का थोड़ी मात्रा में भी प्रयोग किया जाए तो टांसिल्स, खांसी, गले में खराश, जुकाम सर्दी और कफ–ज्वर(फ्लू) जैसे रोग एकदम आक्रमण कर देते हैं।

iF; vkgkj&fogkj

जैसा कि ऊपर कहा गया है, इस ऋतु में गर्मी और सर्दी में अस्थिरता बनी रहती है, अतः इसका प्रभाव शरीर के स्वास्थ्य पर शीघ्र ही पड़ता है। इसको ध्यान में रखते हुए इस मौसम में खान–पान और रहन–सहन में लापरवाही नहीं बरतनी चाहिए। सबसे पहले तो प्रकुपित कफ को शांत करने के लिए वमन(या उल्टी लाने वाले दवाई) एवं नस्य(नाक में दवाई डालकर श्वास द्वारा अंदर खींचना) क्रियाओं का प्रयोग करना चाहिए। हल्के, ताजे और सुपाच्य एवं कटु तीखे और कसैले पदार्थों का सेवन करना चाहिए। चिकनाई के स्थान पर रूखे पदार्थों का प्रयोग लाभदायक है। भोजन में चावल, चने, जौ और गेहूँ से बने पदार्थों का सेवन और शहद का प्रयोग उचित रहता है। अदरक, करेला, आंवला, परवल, सत्तू, मूंग की दाल, हरी साग–सब्जियां, लौकी, पालक, नींबू, सौंठ, गाजर व मौसमी फलों का सेवन करना चाहिए। अदरक के साथ उबाला हुआ जल, शहद मिला जल या वर्षा का जल अधिक मात्रा में पीना चाहिए। इस ऋतु में पुराने अनाज, सरसों का तेल, पीपल, काली मिर्च, हरड़, बहेड़ा, आंवला, बेल, छोटी मूली, राई, धान का लावा, खस का जल पथ्य माने गए हैं। आसव, अरिष्ट, सीधु, माद्वीक तथा माधव–इन मादक द्रव्यों को अच्छी तरह तैयार करके सेवन करना उपयोगी माना गया है। हरड़ के चूर्ण को शहद के साथ लेना लाभदायक रहता है।

स्वास्थ्य को बनाए रखने के लिए नियमित रूप से हल्का व्यायाम, सूर्य उदस से पहले टहलना, उबटन, मालिश तथा गुनगुने पानी से स्नान करना हितकर है। शरीर के मल विसर्जक अंगों (मूत्राशय, मलाशय आदि) की भी गुनगुने पानी से अच्छी तरह सफाई करनी चाहिए। स्नान के पश्चात् शरीर पर कपूर, चंदन, अगरु, कुंकुम आदि सुगंधित पदार्थों का लेप करना चाहिए। सायं के समय दोबारा स्नान किया जा सकता है। इस ऋतु में चैत्र मास में नीम की 10–15 कोंपलें प्रातःकाल खाली पेट चबा–चबाकर कुछ दिनों तक लगातार खानी चाहिए। कुछ दिनों तक लागातार खाने से व्यक्ति सारा साल चर्म रोगों, रक्त विकारों और ज्वर आदि से बचा रहता है। प्रकृति की सुंदरता के साथ–साथ बाग–बगीचों में टहलने से भी मन और शरीर को प्रसन्नता

मिलती है। ढीले सूती वस्त्र पहनने चाहिए, जो बहुत चटकीले रंगों के न हों। धूप में छाते या सिर पर टोपी का प्रयोग ठीक रहता है।

viF;

इस ऋतु के रोगों से बचने के लिए चिकनाई वाले, खट्टे, मीठे और भारी पदार्थों का सेवन बंद कर देना चाहिए। तले और मसालेदार भोजन तथा मिठाइयों का सेवन कम–से–कम मात्रा में करें। वसंत ऋतु में दिन में सोना एकदम छोड़ देना चाहिए क्योंकि इससे कफ दोष और अधिक कुपित हो जाता है। रात को जागते रहने से वायु दोष भी बढ़ जाता है। अतः रात्रि में भी अधिक देर तक जागते नहीं रहना चाहिए। देर रात तक जागते रहने और सुबह देर तक सोए रहने से मल सूखता है, भूख देर से लगती है तथा चेहरे और आंखों की चमक भी नष्ट होती है। इसलिए इस ऋतु में रात को जल्दी सोकर सुबह भी जल्दी उठ जाना चाहिए।

साँख्य दर्शन तत्वज्ञान कक्षा (प्रथम भाग)

वैदिक साधन आश्रम, तपोवन, नालापानी, देहरादून में 01 जून से 15 जून 2021 तक प्रातः 11 बजे से 12.30 बजे तक साँख्यदर्शन की कक्षायें आचार्य आशीष जी, दर्शनाचार्य द्वारा ली जायेगी। विद्या दान पूर्णातया निशुल्क रहेगा। विद्यार्थी अपने सामर्थ्य अनुसार कृतज्ञता प्रकर कर वैदिक परम्परा का आदर्श प्रस्तुत करेंगे।

आश्रम में निवास करने के इच्छुक महानुभावों के लिए आवास, भोजन आदि का व्यय आश्रम कार्यालय के अनुसार देय होगा। आश्रम में विभिन्न स्तरों की आवास व्यवस्था उपलब्ध है। इसके लिए आप निम्नलिखित नम्बरों पर सम्पर्क कर सकते हैं–

1. श्री चन्दन सिंह जी – मो. 07895978734
2. श्री प्रेम प्रकाश शर्मा – मो. 09412051586

आश्रम में वर्षभर दोनों समय यज्ञ एवं सत्संग का आयोजन होता है तथा 12 मई से 16 मई 2021 तक ग्रीष्म उत्सव का आयोजन किया जा रहा है। आप परिवार सहित इन कार्यक्रमों में भी सम्मिलित हो सकते हैं।

fuond%

वैदिक साधान आश्रम, तपोवन, नालापानी, देहरादून।

सन्ध्या का अर्थ एवं व्याख्या

&Mk- IR;no flg

संस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित श्री वामन शिवराम आप्टे द्वारा रचित संस्कृत–हिन्दी कोष के अनुसार सन्ध्या शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से बताई गई है :–

1–सन्धि+यत्+टाप् (प्रत्यय) लगाकर,

2–सम्+ध्यै+अङ्+टाप् (प्रत्यय) लगाकर,

जिसका अर्थ होता है मिलाप, जोड़, प्रातः या सांयकाल का सन्धिवेला तथा प्रातःकाल, मध्याह्न काल तथा सांयकाल के समय की जाने वाली प्रार्थना।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने संस्कार विधि नामक पुस्तक के अन्तर्गत गृहस्थियों के लिए पाँच तरह के यज्ञों का विधान बताया है, ये पाँच यज्ञ हैं :– 1. ब्रह्मयज्ञ (संन्ध्या), 2. देवयज्ञ (अग्निहोत्र या हवन), 3. पितृ यज्ञ (माता–पिता की सेवा–सत्कार), 4. अतिथि यज्ञ (घर पर आये हुए साधु–सन्त, विद्वान् या अपंगादि की सेवा) तथा 5. बलिवैश्व देव यज्ञ।

इन पंच–महायज्ञों में सबसे पहला स्थान 'ब्रह्मयज्ञ' अर्थात् 'सन्ध्या' का ही है। सन्ध्या का अर्थ होता है – 'अच्छे प्रकार से ईश्वर का ध्यान करना। वैसे तो त्रिकाल सन्ध्या का विधान विद्वानों द्वारा बताया जाता है, किन्तु प्रातःकाल व सांयकाल की बेला में सन्ध्या – कर्म अवश्य ही प्रत्येक गृहस्थ, सन्यासी वा ब्रह्मचारी को करनी चाहिए।

मनुस्मृति के अनुसार साधक को सन्ध्या करने से पूर्व जल आदि से शरीर की शुद्धि तथा वैर, राग–द्वेष आदि के त्याग से आभ्यन्तर शुद्धि कर लेनी चाहिए।

'अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति। विद्यातपोभ्याम् भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।' – (मनु0 अ 0 1/श्लोक –109)

यदि हम अपनी प्रवृत्तियों पर विचार करें तो उनकी दो गतियों का पता चलता है – अन्तरमुखी प्रवृत्ति और बहिर्मुखी प्रवृत्ति। प्रायः हमारी बहिर्मुखी प्रवृत्ति रहा करती हैं। हम क्या खायें, क्या पीयें, किससे मिलें, कैसे धन कमायें आदि–आदि बाहर की बातों की ओर ही सोचा करते हैं। दिन रात में बहुत कम ऐसा होता है कि बाहरी बातों से हमको छुटकारा हो सके और हमारी प्रवृत्तियाँ अंतर्मुखी हो सकें। कुछ लोग तो कभी भी नहीं सोचते। हाँ, जब हम सो जाते हैं, और गहरी नींद आ जाती है तो हमारा कुछ देर के लिए बाहरी झंझटों से छुटकारा हो जाता है, परन्तु कभी–कभी हमको अपने विषय में भी सोचना चाहिए। जो सदा संसार के विषयों में ही लिप्त रहता है वह रथ के उस स्वामी के समान है जो रथ को सजाने में ही लगा रहता है और स्वयं भूखा या नंगा रहता है।

हम अपनी प्रवृत्तियों के दो भाग कर सकते हैं एक तो केन्द्रोन्मुखी प्रवृत्तियां दूसरी केन्द्र प्रतिमुखी प्रवृत्तियां। यदि हमारी समस्त वृत्तियाँ केन्द्र की ओर ही रहें तो संसार का काम नहीं चल सकता। हम खाना कपड़ा आदि प्राप्त करने के लिए बाहर की चीजों से नाता जोड़ते हैं। परन्तु ऐसा नित्य करते करते हम अपने केन्द्र से दूर होते जाते हैं।

इसको रोकने के लिए दूसरी प्रवृत्ति केन्द्रोन्मुखी की आवश्यकता होती है याद रखना चाहिए कि किसी चक्र या वृत्त को बनाने के लिये दो चीजों की आवश्यकता होती है– एक केन्द्र और दूसरा अर्द्धव्यास। यदि केन्द्र हो और अर्द्धव्यास न हो तो वृत्त बन ही नहीं सकता और यदि केन्द्र न हो और

अर्द्धव्यास हो तो भी वृत्त का बनाना असम्भव है। केन्द्र स्थान को नियत करता है और अर्द्धव्यास परिणाम को। यदि केन्द्र नियत है तो जितना बड़ा अर्द्धव्यास होगा उतना ही बड़ा चक्र बनेगा और यदि केन्द्र नहीं है तो चाहे छोटा अर्द्धव्यास हो चाहे बड़ा स्थानाभाव के कारण वृत्त नहीं बन सकता। इसका मोटा उदाहरण खूंटे से ले सकते हैं। बैल को खूंटे से बांध दो। बैल खूंटे के चारों ओर फिरेगा। परन्तु कितनी दूर तक ? जितनी बड़ी रस्सी है। रस्सी चक्र के परिमाण को नियत करेगी। खूंटा स्थान को। यदि खूंटा न हो तो बैल रस्सी को लेकर भाग जायेगा। हमारी आत्मा कन्द्र है और हमारी भावनायें अर्द्धव्यास हैं। केन्द्रोन्मुखी और केन्द्र प्रतिमुखी प्रवृत्तियों के समन्वय से ही लोक–यात्रा चलती है। यदि इनके समन्वय में भेद पड़ जाय तो लोक–यात्रा असम्भव है। यजुर्वेद में एक बहुत ही उपयोगी मन्त्र आया है।

यस्मिन्नृचः साम यजूँषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। (यजु0 34/5)

अर्थात् इस मन में ऋग्, यजु, सामवेद इस प्रकार लगे हैं, जैसे रथ के पहिये की नाभि में आरे लगे रहते हैं। पहिये में एक नाभि होती है और दूसरी परिधि। नाभि और परिधि में सम्बन्ध स्थापित करके उसे दृढ़ करने का काम आरों का है। आरे नाभि को अपने स्थान पर रखते हैं। धर्म, धर्म–पुस्तक या ईश्वर भक्ति का सबसे मुख्य काम आरों का है और केन्द्र को परिधि की ओर, परिधि को केन्द्र की ओर खींचे रखते हैं। इससे आत्मा संसार के कामों मे संलग्न होता हुआ भी अपने को नहीं भूलता। जिस प्रकार आरों के न होने से परिधि टूट जाती है और समस्त चक्र अस्त–व्यस्त हो जाता है इसी प्रकार धर्म का विचार न होने से मनुष्य संसार में इतना लिप्त हो जता है कि उसकी संसार–यात्रा भी सुखमय नहीं होती। संसार के सुख क्षणभंगुर होते हैं, उनमें उसी समय तक सुख है जब तक उनका सम्बन्ध हमारी आत्मा से है। जहाँ मर्यादा नष्ट हुई वहां सुख भी नष्ट हुआ और संसार भी बिगड़ गया।

संध्या करने का सबसे बड़ा फल यह है कि हम अपनी आत्मा और उसके भीतर व्यापक परमात्मा का चिन्तन करके अपने सांसारिक सम्बन्ध को मर्यादा में रखते हैं। दिन में दो बार सायं प्रातः यह सोचना कि हम आत्मा हैं, चेतन हैं, जड़ नहीं है, जड़ जगत से हमारा सम्बन्ध उतना ही है जितना हमारे लिये उपयोगी है यह कुछ कम नहीं है। हमारा मन उस कबूतर के समान है जिसके पैर में धागा बन्धा हुआ है। यह धागा उसे अपनी छतरी से नियत दूरी तक ही उड़ने देता है, ज्योंही वह सीमा पार हुई धागा उसको छतरी की ओर खींच लेता है 'बस इससे आगे मत बढ़ो, बढ़ने में विपत्ति है।''

बुद्धिहीन बैल समझता है कि गले की रस्सी उसके लिये व्यर्थ बन्धन है। उसको खूँटे से बहुत दूर नहीं जाने देती। परन्तु उसको ज्ञात नहीं कि स्वामी ने यह रस्सी समझ बूझ कर बाँधी है। रस्सी तुड़ा कर खूंटे से भागना भयानक जंगल में भेड़ियों और व्याघ्र का शिकार होना है। सुख उसी समय तक है जब तक रस्सी से बँधे हुये मर्यादा के भीतर चर रहे हो। ईशोपनिषद् में कहा है –

''तेन त्यक्तेन भुंजीथाः''

त्याग भाव से संसार को भोगा। संसार – यात्रा के लिये संसार की वस्तुओं को भोगना तो है ही, परन्तु क्या भोगते ही चले जाओगे ? कितना भोगोगे ? यदि यात्रा का उल्लंघन किया तो याद रखो कि संसार की वस्तुओं से सुख, भाग जायेगा। संसार की हर एक वस्तु एक सीमा तक ही सुख देती है, उस सीमा को पार किया और दुःख आरम्भ हुआ। अंगूर को मुँह में रक्खो, मीठा लगेगा। उसको दो घन्टे मुँह में रक्खे रहो मतली आने लगेगी। क्यों ? इसलिये कि सीमा से बाहर चले गये। अंगूर मजेदार था। उसका मजा कौन चुरा ले गया ? अंगूर तो तुम्हारे मुँह में है ? उत्तर मिलेगा कि तुम्हारा सीमोल्लंघन ही मजे को उड़ा कर ले गया। अंगूर वही है। आपकी उच्छृंखलता

मजे की बाधक है। परमात्मा–चिन्तन इसको संसार में मर्यादा के बाहर विचरने से रोकता है। वह हमारी वृत्तियों को भीतर की ओर खींचता रहता है। यदि इस चिन्तन को सर्वथा त्याग दिया जाये तो हम बिना खूंटे के बैल हो जाते हैं। मन लगाकर और अर्थ समझकर संध्या करने वाले व्यक्ति को नित्य यह सोचने का अवसर मिलता है कि मैं क्या हूँ ? परमात्मा क्या है ? मेरा संसार से कितना सम्बन्ध है? मुझे संसार की वस्तुओं को भोगने की कहाँ तक आज्ञा है, और मेरा इसमें अपना कितना हित है ?

एक और बात है। यह तो सब जानते हैं कि संसार की वस्तुओं में मजा है, सुख है, वे हमको अच्छी लगती हैं। परन्तु हम को यह ज्ञान नहीं कि वह मजा कितनी सीमा तक है। लोग इसलिये दुःख नहीं उठाते कि वे चीजों को भोगते हैं। वे इसलिये दुःख उठाते हैं कि वे सीमा से अधिक चीजों को भोगते हैं। शरीर धारण के लिये भोजन की आवश्यकता है परन्तु परिमित भोजन की।

इससे आगे क्या है ? रोग और मृत्यु। वही दूध, वही घी, वही मीठा जो शरीर को पुष्टि देते हैं – मात्रा से अधिक रोग के कारण हो जाते हैं। अतः इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हमको जड़ वस्तुओं की उपयोगिता की सीमा का परिज्ञान होता रहे और हम यह न भूल जायें कि हर एक खाने पीने की चीजों के मजे में हमारा चेतन भाग कितना है ? ईश्वर का चिन्तन हमको नित्य यह याद दिलाता रहता है कि हर वस्तु के मजे में इतना भाग आत्मतत्व का है।

एक और मोटा उदाहरण लीजिये। गेहूँ के दो दाने मुँह में डालिये और उनको चबाइये। पहले तो वे फीके से लगेंगे परन्तु चबाते – चबाते उनमें मिठास आ जायेगा। यह मिठास कहाँ से आया ? यह केवल गेहूँ का मिठास नहीं है। जब आप चबाते हैं तो आपके मुख की ग्रन्थियों से एक प्रकार रस निकलता है। वह रस गेहूँ के दोनों के साथ मिलकर उनको मीठा कर देता है। यह बात अगर आपकी समझ में न आवे तो किसी डॉक्टर के पास चले जाइये वह इस रहस्य को समझा देगा। यह दृष्टान्त हमने इसलिये दिया है कि आप यह समझ जायें कि बाहरी वस्तु के सुखप्रद होने में आपका भीतरी भाग कितना है। यदि इस रस का निकलना बन्द हो जाय तो चीजों का मीठा लगना भी बन्द हो जाय।

यह दृष्टान्त ऊपरी है। एक भीतरी दृष्टान्त लीजिये। आपको जो चीज बहुत ही मजेदार लगती हो उसको खाने बैठिये परन्तु ऐसे समय जब आपको अनेक मार्मिक चिंताओं ने घेरा हुआ हो, आप क्या कहा करते हैं ? अजी खाना मुंह में चलता ही न था, बहुत कुछ, खाने का यत्न किया, परन्तु खाया नहीं गया। मैं पूछता हूँ किसका दोष है ? खाने का नहीं, खाना तो भला चंगा है, दोष है आपकी भीतरी भावनाओं का, जिन्होंने मीठे खाने में विष मिलाकर उसे कड़वा कर दिया। इसलिए डॉक्टर लोग कहते हैं कि खाने के समय मन को आनन्द में रखो, हंसी खुशी से खाओ, नाक–भौं चढ़ाकर मत खाओ। जैसे बाहरी वस्तु को मीठा बनाने के लिए मुख की ग्रन्थियों के रस की आवश्यकता है उसी प्रकार भीतरी वृत्तियों अर्थात् आनन्दयुक्त मन की भी जरूरत है। मन की शांन्ति में आत्मतत्व बड़ा बहुमूल्य अंग है। संध्या हमको इस तत्व की याद दिलाती है।

संध्या करने में हम ईश्वर की खुशामद नहीं करते। किसी ऐसे व्यक्ति के गुणों का चिन्तन करना जिससे हमको लाभ पहुँचता है खुशामद नहीं है। खुशामद वह होती है जिसमें किसी को खुश करके उससे अनुचित लाभ उठाने का यत्न किया जाय जिसके हम अधिकारी नहीं है।

जितनी वस्तुओं को हम भोगते हैं उनके गुणों का पहले चिन्तन करते हैं। प्यासा मनुष्य जल को चाहता हो तब है जब उसको उसकी शीलता का ध्यान आ जाता है। हम किसी मनुष्य के पास उसके गुणों से लाभ उठाने के लिए उसी समय जाते हैं जब हम उसके गुणों का पहले चिन्तन करते हैं, अतः गुणों का चिन्तन खुशामद नहीं है और यदि यह चिन्तन, स्पष्ट शब्दों द्वारा किया

जाय तो चिन्तन में कोई बाधा नहीं पड़ती अपितु चिन्तन अधिक स्पष्ट हो जाता है क्योंकि शब्दों का उच्चारण स्पष्ट चिन्तन का सहायक होता है। जैसे – बच्चा चिल्लाता है 'बर्फ वाले! बर्फ दे जाओ'' यह खुशामद नहीं है। बर्फ के साथ बर्फ वाले के गुणों का चिन्तन बच्चे के मस्तिष्क में हो रहा है। शिष्य गुरु से प्रार्थना करता है 'गुरु जी व्याकरण पढ़ाइये' इसका अर्थ यह है कि गुरु जी कहते ही गुरु जी के गुणों का चिन्तन हुआ। इसी चिन्तन से प्रेरित हो कर ही तो प्रार्थना की गई। कभी–कभी गुणों का चिन्तन मूक भी होता है। जैसे कोई अपने पिता के पास जाकर कहता है ''पिता जी, दो रुपये चाहिए'' ऐसा प्रार्थी मन में जानता है कि पिता रुपये वाला भी है और उसका मुझे पर स्नेह भी है तथा वह कंजूस भी नहीं है। यदि पुत्र के ज्ञान में पिता के यह गुण विद्यमान न हो तो वह कदापि ऐसी प्रार्थना न करें, परन्तु यदि लाभ पहुँचाने वाला व्यक्ति अदृष्ट और अति सूक्ष्म हो और साधारणतया उधर को ध्यान न जाता हो तो प्रार्थी के लिए स्पष्ट शब्दों में प्रार्थना आवश्यक हो जाती है, क्योंकि जैसे–जैसे शब्द व्यक्त किये जाते हैं उन शब्दों के वाच्यगुणों का भी स्पष्टतया चिन्तन होने लगता है। माता के हाथ से प्राप्त की हुई रोटी को खाता हुआ पुत्र यदि यह चिन्तन भी करता है कि मेरी प्यारी माता मुझे खिला रही है तो उसका न केवल माता के प्रति प्रेम ही अधिक हो जाता है अपितु उस प्रेम के आनन्द का अधिक भाग पुत्र को भी मिलता है। प्रेम का आनन्द उभयपक्षीय है, जो प्रेम करता उसे भी मजा आता है और जिससे प्रेम किया जाता है उसे भी मजा आता है। छोटे बच्चे प्रायः यह आग्रह किया करते हैं कि उनकी माता ही उनको रोटी खिलावे। वे दूसरे के हाथ से खाना पसन्द नहीं करते। यह है तो बच्चों की सी बात, पेट तो खाने से भरेगा खिलाने वाले के हाथ से नहीं, परन्तु इस साधारण–सी घटना के पीछे एक बहुत बड़ी दार्शनिक सच्चाई छिपी हुई है। बच्चा रोटी भी खाता है और माता के प्रेम का भी आस्वादन करता है। इसी प्रकार संसार के भोग्य पदार्थों के साथ–साथ यदि यह भावना भी रहे कि ये भोग्य पदार्थ किसी परम कारुणिक सन्त की ओर से आ रहे हैं तो उनसे प्राप्त होने वाले आनन्दों मे विशदता आ जाती है। इसलिए जो लोग 'खुशामद खुशामद' कह कर ईश्वर की भक्ति की अवहेलना करते हैं, वे अज्ञानवश अपने को एक परम आनन्द से वंचित रखते हैं।

आप बाजार से मिठाई मोल लेकर खाइये और अपने मित्र की भेजी हुई मिठाई खाइये। इन दोनों के आस्वादन में भेद होगा। पहली मिठाई में केवल स्थूल मिठास है। दूसरी में स्नेह का सूक्ष्म मिठास भी विद्यमान है। उपहार भेजने की जो प्रथा है उसके पीछे भी यह सत्यता निहित है। उपहार का प्रकट रूप से कोई अधिक मूल्य नहीं, परन्तु जब उस उपहार के साथ प्रेम या आदर या मान संयुक्त रहता है तो उसका मूल्य बढ़ जाता है। तभी तो कहावत है – ''मान का पान भी बड़ा होता है।''

संध्या के मंत्रों का यही प्रयोजन है कि वे स्पष्ट रूप में उस सत्ता के गुणों का वर्णन करते हैं जो हमको संसार में सब कुछ दे रही है। उनके गुणों का चिन्तन उस सत्ता के लिए नहीं अपितु हमारे आन्तरिक विकास के लिए आवश्यक है।

कुछ लोगों का आक्षेप है कि संध्या या प्रार्थना नियत शब्दों में क्यों की जाय ? क्या ईश्वर केवल संस्कृत भाषा ही समझता है ? क्या वह हमारे हृदय की भाषा नहीं जानता ? ऐसा आक्षेप करने वाले संध्या के महत्व को नहीं समझते। हम ऊपर कह चुके हैं कि ईश्वर के गुणों का चिन्तन आवश्यक है। हम व्यर्थ ही उससे कुछ मांगते नहीं और न यह कोई अच्छी बात है कि हम ईश्वर से जो चाहे मांगा करें। यहाँ प्रश्न यह नहीं है कि ईश्वर सुनता है या नहीं और संस्कृत समझता है या अरबी। प्रश्न यह है कि हमको अपने मन में किन गुणों का चिन्तन करना है। एक मनुष्य कह सकता है 'हे प्रभु! 'मैं आज डांका डालने जा रहा हूँ। मुझे सफलता प्रदान कीजिए' परन्तु ऐसी प्रार्थना वही करेगा जिसको यह विश्वास होगा कि

ईश्वर डांकुओं की भी सहायता किया करता है। ऐसे गुणों का चिन्तन उसके आत्मिक विकास के लिए कितना लाभ या हानि पहुँचायेगा इस पर पाठकगण स्वयं विचार कर सकते हैं। मस्तिष्क का विकास तो विचारों से होगा। हमको प्रार्थना में केवल यही नहीं करना है कि जो विचार हमारे मन में हों, उनको व्यक्त कर दें। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ा और आवश्यक कार्य यह है कि हमारे मन में वे तरंगे भी उत्पन्न हो जाँय जो साधारणतया उत्पन्न नहीं हो रहीं। हम अपने मस्तिष्क के तल को इतना ऊँचा करना चाहते हैं। अतः इसके लिए विकास के आरम्भ काल में नियत शब्द चाहिए। भक्त की वह अवस्था भी आ सकती है जब उसका मन इतना उच्च हो जाय कि बाह्यशब्दों की आवश्यकता न पड़े, परन्तु यह तो बड़े उन्नत मस्तिष्कों की बात है। प्रत्येक पुरुष ऐसा नहीं होता और जब तक वह ऐसा न हो उसको संध्या के नियत शब्द अपने समक्ष रखने चाहिए। शब्द भावों के रक्षक होते हैं, बिना शब्दों के भाव लुप्त हो जाने का भय रहता है। अतः शब्दों की अवहेलना वा उपेक्षा नहीं की जा सकती। यह ठीक है कि शब्द सब कुछ नहीं है। केवल रटना लाभकर नहीं परन्तु यह भी कहना अनुचित होगा कि शब्द कुछ भी नहीं हैं। वेद मंत्रों में जो शब्द आये हैं वे अर्थ सहित समझने से आदर्श हमारे हृदय पटल से ओझल नहीं होने पाता। बिना मंत्रों के भी हम अपने भाव या अपनी इच्छायें ईश्वर के प्रति प्रकट कर सकते हैं। परन्तु केवल इतना ही करना भिकारीपन होगा। प्रत्येक पुरुष की इच्छायें उसकी प्रवृत्तियों और योग्यता के अनुसार होती है। एक शराबी ईश्वर से शराब की याचना कर सकता है। एक कामी ईश्वर से कामसाधना के लिये प्रार्थी हो सकता है परन्तु हमारी इच्छाऐं पूरी होती रहें यही तो जीवन का उद्देश्य नहीं होना चाहिए। संध्या का यह प्रयोजन नहीं कि हमारी इच्छाओं की पूर्ति हो जाय। संध्या का प्रयोजन तो यह है कि बुरी इच्छायें आने न पावें और यदि उठें भी तो वे मुरझा जावें। आत्मोन्नति के लिये साधक द्वारा ईश्वर की प्रार्थना की जानी चाहिए। हृदय रूपी उद्यान में फल फूल भी उगते हैं, झाड़ झंकार व घास फूँस भी। सभी की उन्नति के लिए तो प्रार्थना नहीं की जानी चाहिए। घास को उखाड़ना भी जरूरी है जिससे फल फूल को बढ़ने का अवसर प्राप्त हो सके।

परमात्मा (ईश्वर) के बारे में वेद की आज्ञा है कि वह हमारा बन्धु है जनिता (पिता) है, वह हमारे सब कार्यों को पूर्ण करने वाला है। वह परमात्मा सम्पूर्ण लोकों के नाम, स्थान व जन्मों को जानता है और वह सांसारिक सुख – दुःख से रहित, नित्यानन्द युक्त मोक्षस्वरूप धारण करने हारे परमात्मा में मोक्ष को प्राप्त होकर विद्वान लोग स्वेच्छापूर्वक विचरण करते हैं। वही परमात्मा सच्चे साधक का 'उपासक का परमगुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है। अतः अपने लोग मिलकर सदा उस परमपिता परमात्मा (ईश्वर) की स्तुति – प्रार्थना श्रद्धापूर्वक किया करें। वेद–मन्त्र इस प्रकार है :–

''स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।

यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये
धामन्नध्यैरयन्त।।'' (यजु. 32/10)

i |kFk %&

'वही हमारा बन्धु सखा है, वही विधाता
जनिता माता।
जन रहा सब धाम भुवन वह, करता
लेखा–जोखा खाता।
उसी एक परमेश्वर की हम, नित्य स्तुति करें
प्रार्थना।
तृतीय धाम पहुँचाने वाला, वही मोक्ष–सुख भरे
दामना।
प्रेमभाव से मिलजुलकर हम, निर्मल मन हो
ध्यान धरें।
अमृत आनन्द पाने हेतु, नित उसका हम
स्तुति–गान करें।।'

MUNJAL SHOWA

हाई क्वालिटी शॉकर्स

TPM Certified

ISO / TS - 16949 - 2002 Certified

ISO - 14001 Certified

OHSAS - 18001 Certified

मुंजाल शोवा लिमिटेड भारत की प्रमुख शॉक एब्जॉर्बर्स बनाने वाली कंपनी है जिसकी रेंज फ्रन्ट फोर्कस, स्ट्रट्स (गैस चार्जड और कन्वेन्शनल) और गैस स्प्रिंगस की टू व्हीलर/फोर व्हीलर उद्योगों को उपलब्ध कराती है। कंपनी गुणवत्ता और सुरक्षा के उच्चतम मानकों के अनुरूप अपने सभी उत्पादों का निर्माण करती है। कंपनी के उत्पाद आरामदायक और सुरक्षित सवारी देते हैं और ये टिकाऊ और विश्वसनीय भी हैं। मुंजाल शोवा लिमिटेड, QS 9000, TS–16949, ISO 14001, OHSAS 18001 और TPM प्रमाणित कंपनी है। मुंजाल शोवा के तीन मैन्युफैक्चरिंग प्लॉट हैं – गुड़गाँव, मानेसर (हरियाणा) और हरिद्वार (उत्तराखण्ड)। मुंजाल शोवा लिमिटेड का शोवा कार्पोरेशन जापान के साथ तकनीकी और वित्तीय सहयोग करार है।

हमारे उत्पाद

- स्ट्रट्स/गैस स्ट्रट्स
- शॉक एब्जॉर्बर्स
- फ्रन्ट फोर्कस
- गैस स्प्रिंगस/विन्डो बैलेन्सर्स

हमारे ख्यातिप्राप्त ग्राहक

Hero HONDA HONDA MARUTI SUZUKI YAMAHA

मुंजाल शोवा लिमिटेड

प्लॉट नं. 9–11, मारुति इंडस्ट्रियल एरिया
गुड़गाँव–122015, हरियाणा
दूरभाष :
0124–2341001, 4783000, 4783100
ईमेल : msladmin@munjalshowa.net
वेबसाइट : www.munjalshowa.net

MUNJAL SHOWA

डाक पंजीयन UA/DO/DDN/75/2021-2023 समाचार पत्र पंजीयन 51900/88

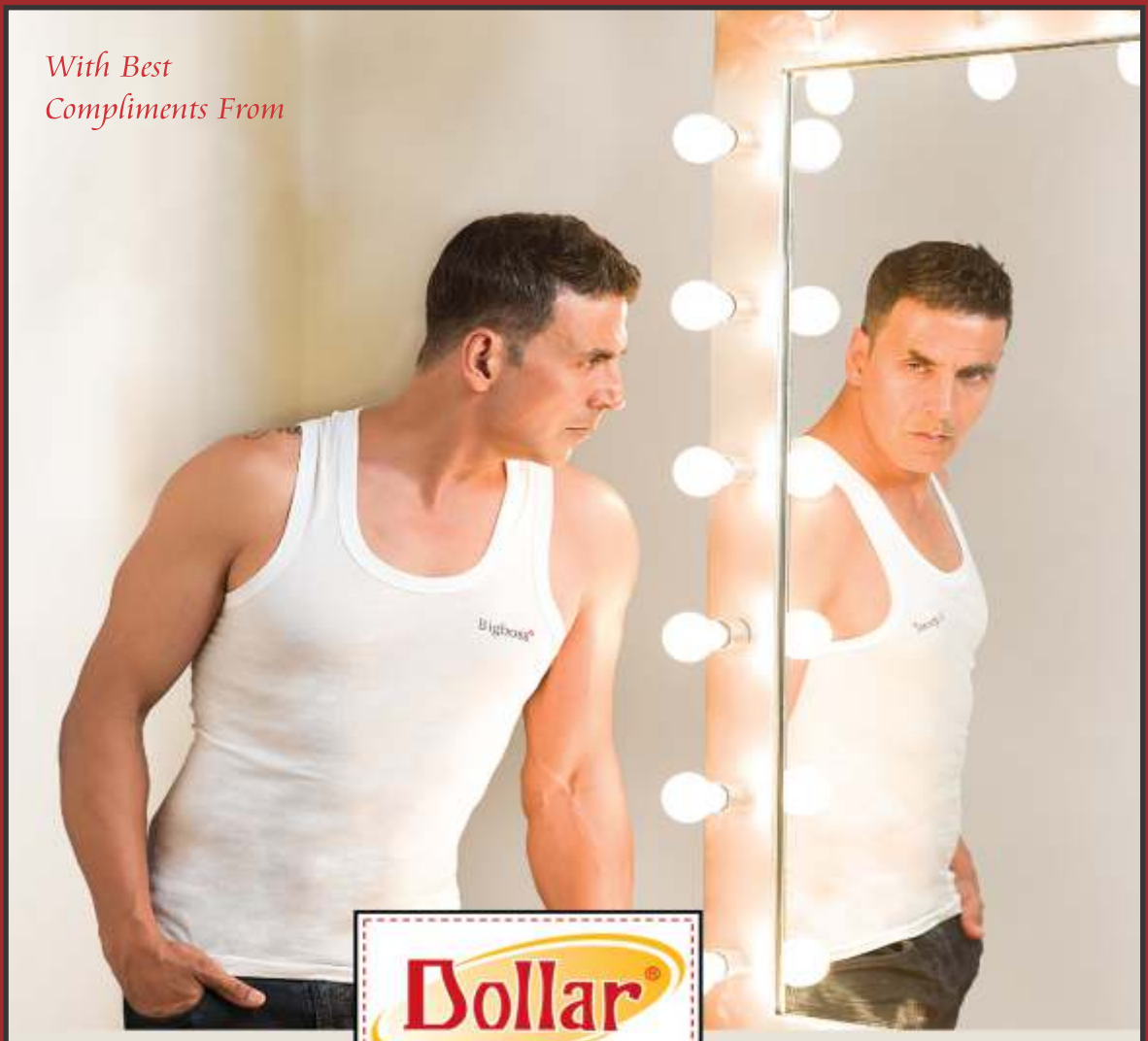

सरस्वती प्रेस, देहरादून, ई-मेल : akhilg333@gmail.com

वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी के लिए प्रकाशक मुद्रक प्रेम प्रकाश द्वारा सरस्वती प्रेस, 2, ग्रीन पार्क, निरंजनपुर, देहरादून–248001 (उत्तराखण्ड) से मुद्रित एवं वैदिक साधन आश्रम सोसाइटी (रजि.), नालापानी, देहरादून (उत्तराखण्ड) से प्रकाशित।

संपादक– कृष्णकान्त वैदिक शास्त्री